अथाष्टमं काण्डम्

अष्टम काण्ड के प्रथम दो सूक्तों का ऋषि 'ब्रह्मा' है, यह उत्तम सात्त्विक वृत्तिवालों में प्रथम स्थान में है, अर्थात् इसका जीवन सात्त्विकतम है, इसीलिए यह दीर्घजीवन प्राप्त करता है। इन सूक्तों का देवता (विषय) 'आयु' ही है। इसके जीवन का वर्णन निम्न मन्त्रों में देखिए—

अथाष्टादशः प्रपाठकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**पुरोबृहतीत्रिष्टुप्** ॥

सूर्यस्य भागे

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम्।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके॥ १ ॥

१. **अन्तकाय**=(अन्तं करोति) सब प्राणियों का नाश करनेवाले, **मृत्यवे**=प्राणों के वियोजक मृत्यु के लिए **नमः**=नमस्कार हो। इस अन्तक की कोपदृष्टि से बचने के लिए हम उचित उपाय करें। हे आयुष्काम पुरुष! **ते**=तेरे **प्राणाः अपानाः**=बहिर्मुख संचारी तथा आवङ्मुख संचारी वायुओं की वृत्तियाँ **इह रमन्ताम्**=इस शरीर में ही रमण करें। २. **अयम्**=यह प्राणसाधना करनेवाला **पुरुषः**=पुरुष **असुना सह**=प्राण के साथ **इह अस्तु**=इस शरीर में ही निवास करनेवाला हो, जोकि **सूर्यस्य भागे**=सूर्यकिरणों का सेवन करनेवाला है (भज सेवायाम्) अतएव **अमृतस्य लोके**=नीरोगता का स्थान है। जब तक यह शरीर सूर्यकिरणों के सम्पर्क में चलता है तब तक नीरोग बना रहता है—'उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्ति' उदय होता हुआ सूर्य रोग-कृमियों का विनाशक है।

भावार्थ—हम मृत्यु को दूर करने के लिए प्राणसाधना को अपनाएँ। हमारे शरीर में प्राणापानशक्ति बनी रहे। सूर्य-किरणों के सम्पर्क में रहकर हम शरीर को नीरोग रक्खें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

उत्

उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान्।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये॥ २ ॥

१. **एनम्**=रोगादि के कारण मूर्च्छा-लक्षण अन्धतमस् में प्रवेश करते हुए उस पुरुष को **भगः**=भजनीय—सेवनीय—किरणोंवाला सूर्य **उत् अग्रभीत्**=अन्धकार से ऊपर उठाता है। **अंशुमान् सोमः**=अमृतमय किरणोंवाला चन्द्र **एनम् उत्**=इस पुरुष को ऊपर उठाता है। सूर्य-चन्द्र की किरणों के सम्पर्क में निवास से इसकी प्राणापानशक्ति ठीक बनी रहती है। २. **एनम्**=इस पुरुष को **देवाः**=सब रोगों को पराजित करने की कामनावाले (दिव् विजिगीषायाम्) **मरुतः**=उनचास भागों में विभक्त हुए ये प्राणवायु **उत्**=सब रोगों से ऊपर उठाते हैं। इसी प्रकार **इन्द्राग्नी**=इन्द्र और अग्निदेव—जितेन्द्रियता व आगे बढ़ने की भावना **उत्**=इसे रोगों से ऊपर उठाते हैं और **स्वस्तये**=इसके कल्याण के लिए होते हैं।

भावार्थ—दीर्घजीवन के लिए आवश्यक है कि हम (क) सूर्य और चन्द्र की किरणों के

सम्पर्क में रहें, (ख) प्राणसाधना में प्रवृत्त हों, (ग) जितेन्द्रिय बनें और (घ) हममें आगे बढ़ने की भावना हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आयुः**॥ छन्दः—**पुरोबृहतीत्रिष्टुप्**॥

'असु-प्राण-आयु व मन'

इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः।
उत्त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि॥ ३॥

१. हे आयुष्काम पुरुष! **इह ते असुः**=यहाँ—इस शरीर में तेरा यह 'असु' है (अस् क्षेपणे) सब रोगों को परे फेंकनेवाली शक्ति है। **इह प्राणः**=यहाँ तुझे प्राणित करनेवाला यह प्राण है। 'प्राण-अपान-उदान-व्यान व समान' के रूप में यह शरीर के सब व्यवहारों को ठीक से चलानेवाला है। **इह आयुः**=यहाँ तेरा यह जीवन है 'शतायुर्वै पुरुषः' सौ वर्ष के लिए नियत तेरा जीवन है। **इह ते मनः**=यहाँ तेरा यह मन है—यह तेरा मन 'ज्योतिषां ज्योतिः' ज्योतियों की भी ज्योति है—'येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्' यह मन भूत, भुवन, भविष्यत् का परिगृहीता व अमृत है। २. इन सबके होते हुए रोगादि सम्भव ही कैसे हो सकते हैं? हम **दैव्या वाचा**=देव के द्वारा दी गई वेदवाणी के द्वारा **त्वा**=तुझे **निर्ऋत्याः पाशेभ्यः**=दुर्गति की बन्धन-रज्जुओं से **उत् भरामसि**=ऊपर उठाते हैं। वेदज्ञान द्वारा 'असु,प्राण,आयु व मन' का ठीक ज्ञान प्राप्त करता हुआ तू दुर्गति के पाशों से नहीं जकड़ा जा सकता।

भावार्थ—हम वेदवाणी के द्वारा शरीरस्थ 'असु,प्राण,आयु व मन' का ठीक ज्ञान प्राप्त करके उनके उचित विनियोग व शक्तिवर्धन से दुर्गति के पाशों में जकड़े जाने से अपने को बचाएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आयुः**॥ छन्दः—**प्रस्तारपङ्क्तिः**॥

वेदज्ञान, अग्निहोत्र, सूर्यकिरण-सेवन

उत्क्रामातः पुरुष मावं पत्था मृत्योः पड्बीशमवमुञ्चमानः।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य सन्दृशः॥ ४॥

१. हे **पुरुष**=इस देवनगरी में निवास करनेवाले पुरुष! **अतः उत् क्राम**=वेदज्ञान द्वारा इस मृत्युपाश-समूह से तू ऊपर उठ। **मा अवपत्थाः**=तू अवनति-गर्त में गिरनेवाला न हो। **मृत्योः पड्बीशम्**=मृत्यु के पादबन्धन पाश को **अवमुञ्चमानः**=तू अपने से सुदूर विच्छिन्न करनेवाला हो। २. **अस्मात् लोकात्**=गत मन्त्र में 'दैव्या वाचा' शब्दों से वर्णित वेदज्ञान के प्रकाश से (लोक=आलोक) **मा च्छित्थाः**=तू पृथक् मत हो। **अग्नेः संदृशः**=अग्नि के सन्दर्शन से तू पृथक् न हो—नित्य अग्निहोत्र का दर्शन करनेवाला बन तथा **सूर्यस्य (संदृशः)**=सूर्यदर्शन से पृथक् मत हो—सूर्यकिरणों के सम्पर्क में रहनेवाला बन।

भावार्थ—दीर्घजीवन के लिए आवश्यक है कि हम (क) वेदज्ञान प्राप्त करें,(ख) नियम से अग्निहोत्र करें, (ग) सूर्य-किरणों के सम्पर्क में जीवन-यापन करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आयुः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

शुद्ध वायु, पवित्र जल व सूर्यकिरण

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः।
सूर्यस्ते तन्वे३ शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः॥ ५॥

१. हे पुरुष! **तुभ्यम्**=तेरे लिए यह **मातरिश्वा**=(मातरि अन्तरिक्षे श्वयति) अन्तरिक्ष में गति करनेवाला **वातः**=वायु **पवताम्**=बहे—पवित्रता करनेवाला हो। **तुभ्यम्**=तेरे लिए **आपः**=जल

अमृतानि वर्षन्तु=अमृतों का वर्षण करें। ये मेघजल तुझे नीरोगता प्राप्त कराएँ। २. **सूर्यः ते तन्वे शं तपाति**=यह सूर्यदेव तेरे शरीर के लिए सुखकर होकर तपे। **मृत्युः त्वा दयताम्**=यह मृत्यु तेरा रक्षण करे, **मा प्रमेष्ठाः**=तू हिंसित न हो।

भावार्थ—'शुद्ध वायु का सेवन, पवित्र मेघ-जलों का ग्रहण व सूर्यकिरणों में निवास' हमें दीर्घजीवन प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उद्यानम्, न अवयानम्

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेमममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि॥ ६॥

१. हे **पुरुष**=इस देवपुरी में निवास करनेवाले पुरुष! **ते उद्यानम्**=तेरा उद्गमन—उन्नति ही हो, **न अवयानम्**=कभी तेरा अधोगमन—अवनति न हो। **ते**=तेरे लिए **जीवातुम्**=जीवन औषध तथा **दक्षतातिम्**= बल की वृद्धि **कृणोमि**=करता हूँ। तेरे लिए नीरोगता तथा शक्ति प्राप्त कराता हूँ। २. तू **अमृतम्**=अमरणधर्मा—रोगरहित **सुखम्**=(सु-ख) उत्तम इन्द्रियोंवाले **रथम्**=इस शरीर-रथ पर **आरोह**=आरोहण कर, **अथ**=अब उत्तम जीवन-यात्रा के अन्तिम भाग में **जिर्विः**=पूर्ण अवस्था—बड़ी उम्र को प्राप्त हुआ तू **विदथम् आवदासि**= समन्तात् ज्ञान का प्रचार करनेवाला हो, अपने ज्ञान व अनुभवों से औरों को लाभ पहुँचानेवाला हो।

भावार्थ—हम ऊपर उठें, अवनत न हों। जीवन-शक्ति व बल प्राप्त करें। नीरोग, स्वस्थ इन्द्रियोंवाले शरीर-रथ में जीवन-यात्रा करते हुए जीवन के अन्तिम भाग में ज्ञान का प्रसार करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**त्रिपाद्विराड्गायत्री** ॥

मृत्यु की चिन्ता न करना

मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितृन्।
विश्वेदेवा अभि रक्षन्तु त्वेह॥ ७॥

१. हे पुरुष! **ते मनः तत्र मा गात्**=तेरा मन वहाँ=यमलोक में न जाए, अर्थात् तू मृत्यु की चिन्ता से ग्रस्त मत हो। **मा तिरःभूत्**=तेरा मन तिरोहित—विलीन सा—चिन्ता में डूबा हुआ न हो। **मा जीवेभ्यः प्रमदः**=जीवित लोगों के विषय में अपने कर्त्तव्य में तू प्रमादयुक्त न हो। २. **पितृन् मा अनुगाः**=हर समय चिन्ताकुल हुआ-हुआ तू पितरों के पीछे मत चला जा। **विश्वे देवाः**=सब देव—सूर्य आदि प्राकृतिक देव अथवा इन्द्रियाँ **त्वा**=तुझे **इह**=इस शरीर में **अभि-रक्षन्तु**=सर्वतः रक्षित करें। तू सूर्यादि के सम्पर्क में स्वस्थ इन्द्रियोंवाला होता हुआ दीर्घजीवी बन।

भावार्थ—हम मौत की ही चिन्ता न करते रहें। हमारा मन तिरोहित-सा न बना रहे। हम जीवित लोगों के प्रति अपने कर्त्तव्यों में प्रमाद न करें। सूर्यादि देवों के सम्पर्क में स्वस्थ तथा सुरक्षित जीवन बिताएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**विराट्पथ्याबृहती** ॥

मृत्युर्वै तमः, प्राणो ज्योतिः

मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम्।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे॥ ८॥

१. **मा गतानाम् आदीधीथा**=(दीधी देवने) तू चले गये व्यक्तियों का ही रोना मत रोता रह अथवा उन्हीं का ध्यान मत करता रह, उन गये हुओं का ध्यान न कर, **ये**=जो **परावतं**

नयन्ति=तुझे भी दूर देश में ले-जाते हैं। मरे हुओं को रोता रहेगा तो तू भी मरेगा ही। २. **तमसः**=मृत्यु की चिन्ता के अन्धकार से **ज्योतिः आरोह**=तू प्रकाश में आरोहण कर। **एहि**=तू समन्तात् कर्त्तव्यों में गतिवाला हो। **ते हस्तौ आरभामहे**=हम तेरे हाथों को पकड़ते हैं, तुझे सहारा देकर अन्धकार से ऊपर उठाते हैं। गतमन्त्र में संकेतित 'विश्वेदेवाः'=सब देव हमारे उत्थान में सहायक होते हैं।

भावार्थ—हम गये हुओं का ही रोना न रोते रहकर मृत्यु के अन्धकार से जीवन की ज्योति में आरोहण करें, कर्त्तव्य-कर्मों में तत्पर हों। सब देव इस उत्थान में हमारे सहायक हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**प्रस्तारपंक्तिः** ॥

'श्यामः शबलः च' श्वानौ (यमरूप)

श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः॥ ९॥

१. 'अहर्वै शबलो रात्रिः श्यामः' (कौ० २।९) इस वाक्य के अनुसार 'दिन और रात्रि' ही यम के शबल व श्याम श्वा हैं। हे पुरुष! ये **यौ**=जो **श्यामः च शबलः च**=रात्रि व दिनरूप (श्याम व शबल वर्णवाले) **यमस्य**=सर्वनियन्ता प्रभु के **पथिरक्षी श्वानौ**=मार्गरक्षक श्वा हैं, ये **प्रेषितौ**=भेजे हुए **त्वा**=तुझे **मा**=मत सन्दष्ट करें। दिन व रात्रि हमारे जीवनों को काटते चलते हैं। इसी दृष्टि से इन्हें यमराज के 'श्वा' कहा गया है। २. हे पुरुष! तू इनसे असन्दष्ट हुआ-हुआ **अर्वाङ् एहि**=हमारे सामने आनेवाला बन। **मा विदीध्यः**=गये हुए पुरुषों का विलाप ही मत करता रह। सब प्रकार के रोने-पीटने को छोड़कर अपने कर्त्तव्य-कार्यों को करने के लिए उद्यत हो। **अत्र**=इस जीवन में **पराङ् मनाः**=सुदूर गये हुए मनवाला होकर **मा तिष्ठः**=मत स्थित हो। गये हुए पुरुषों का ही राग न अलापता रह। भटकते हुए मन को स्थिर करके कर्त्तव्य-कर्मों में तत्पर हो।

भावार्थ—दिन-रात्रिरूप यमराज के श्वान ही हमें न काटते रहें। इनसे सन्दष्ट हुए-हुए हम मरे हुओं का राग ही न अलापते रहें। न भटकते हुए मनवाले होकर हम अपने कर्त्तव्यों को करने में तत्पर हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

परस्तात् भयं, अर्वाक् अभयम्

मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि।
तम एतत्पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक्॥ १०॥

१. हे पुरुष! **एतं पन्थाम् मा अनुगाः**=इस मार्ग के पीछे मत जा, जिससे कि मृत जाते हैं। **एषः भीमः**=यह गये हुओं का स्मरण करते रहने का मार्ग भंयकर है। मृतों का ही शोक करते रहना ठीक नहीं। इस मार्ग पर जाने के निषेध के द्वारा मैं तुझे **तं ब्रवीमि**=उस मार्ग का उपदेश करता हूँ, **येन पूर्वं न इयथ**=जिससे मृत्युकाल से पूर्व तू नहीं जाता है। मरों का ही शोक करता रहेगा तो समय से पहले जाएगा ही। २. **एतत्**=यह मरे हुओं का ही शोक करते रहना तो **तमः**=अन्धकार है—अज्ञान है। **मा प्रपत्थाः**=इसकी ओर मत जा। **परस्तात्**=परे, अर्थात् इहलोक के कर्त्तव्यों में ध्यान देकर गये हुओं का शोक करते रहने में तो **भयम्**=भय-ही-भय है। **अर्वाक्**=हम सबके सम्मुख आने में ही **अभयम्**=निर्भयता है। कल्याण इसी बात में है कि तू शोक को छोड़कर जीवितों के सम्मुख प्राप्त हो और उनके प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन कर।

भावार्थ—गये हुओं का ही शोक करते रहना और अपने कर्त्तव्यों में प्रमाद करना भयान्वित

मार्ग है। यह तो हमें समय से पूर्व ही मृत्यु-मुख में ले-जाएगा।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आयुः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अग्नयः

रक्षन्तु त्वाऽग्नयो ये अप्स्व१न्ता रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग्विद्युता सह॥ ११॥

१. **त्वा**=तुझे ये **अग्नयः**=अग्नियाँ **रक्षन्तु**=रक्षित करें, ये **अप्सु अन्तः**=जो प्रजाओं में निवास करती हैं, ये अग्नियाँ 'माता, पिता, आचार्य' रूप हैं। 'पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताऽग्निर्दक्षिणः स्मृतः। गुरुराहवनीयस्तु साऽग्नित्रेता गरीयसी' मातारूप अग्नि तुझे चरित्रवान्, पितारूप अग्नि शिष्टाचार-सम्पन्न तथा गुरुरूप अग्नि ज्ञानदीप्त जीवनवाला बनाये। वह अग्नि भी **त्वा रक्षतु**=तेरा रक्षण करे, **यम्**=जिसे **मनुष्याः**=मननशील पुरुष **इन्धते**=यज्ञवेदी में दीप्त किया करते हैं। यह अग्निहोत्र में दीप्त अग्नि भी रोगकृमियों के विनाश के द्वारा तेरा रक्षण करे। २. वह **जातवेदाः**=सर्वज्ञ, सर्वव्यापक **वैश्वानरः**=मानवमात्र का हित करनेवाला प्रभु **रक्षतु**=तेरा रक्षण करे। यह **दिव्यः**=द्युलोक में होनेवाला सूर्यरूप अग्नि **विद्युता सह**=विद्युत् के साथ **त्वा मा प्रधाक्**=तुझे दग्ध करनेवाला न हो। सूर्य या विद्युत् के कारण किसी प्रकार की आधिदैविक आपत्ति तुझपर न आये।

भावार्थ—माता,पिता व आचार्यरूप अग्नियों से हमारा जीवन बड़ा सुन्दर बने। नियम से अग्निहोत्र करते हुए हम रोगकृमियों का विनाश करके सुखी व नीरोग हों। प्रभु हमारे रक्षक हों। प्रभु की ये सूर्य या विद्युद्रूप विभूतियाँ हमारे लिए कल्याणकर हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आयुः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाजगती**॥

कामाग्नि तथा देवाग्नि से रक्षण

मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात्संकसुकाच्चर।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च।
अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः॥ १२॥

१. हे पुरुष! **क्रव्यात्**=मांस को खा जानेवाला, तुझे अमांस (Emaciated दुर्बल) बना देनेवाला, यह कामाग्नि **त्वा**=तुझे **मा अभिमंस्त**='मेरा यह आहार है' ऐसा अभिमान न करे। तू इस **संकसुकात्**=(कस् to destroy, संकसुक=bad, wicked) नष्ट कर देनेवाली दुरितमय (महापाप्मा) अग्नि से **आरात् चर**=दूर गतिवाला हो। कामाग्नि का तू शिकार न हो जाए। २. यह **द्यौः**=द्युलोक **त्वा रक्षतु**=तेरा रक्षण करे, **पृथिवी रक्षतु**=पृथिवी तेरा रक्षण करे। **सूर्यः च चन्द्रमाः च**=सूर्य और चन्द्रमा **त्वा रक्षताम्**=तेरा रक्षण करें। **अन्तरिक्षम्**=यह अन्तरिक्षलोक भी **देवहेत्याः**=इस विद्युद्रूप देववज्र से **रक्षतु**=तेरा रक्षण करे, अर्थात् किसी प्रकार की आधिदैविक आपत्ति तुझपर न आ पड़े।

भावार्थ—अध्यात्म में हम कामाग्नि का शिकार न हों तथा आधिदैविक जगत् में द्युलोक, पृथिवीलोक व अन्तरिक्षलोक तथा सूर्य-चन्द्र आदि से आनेवाली आधिदैविक आपत्तियों से बचे रहें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आयुः**॥ छन्दः—**त्रिपदाभुरिग्महाबृहती**॥

षड् देवाः

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वाऽनवद्राणश्च रक्षताम्।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम्॥ १३॥

१. **बोधः च प्रतिबोधः च**=बोध और प्रतिबोध **त्वा रक्षताम्**=तेरा रक्षण करें। वस्तुओं का

ज्ञान 'बोध' कहाता है और प्रत्येक वस्तु में प्रभु की महिमा का ज्ञान 'प्रतिबोध' शब्द से कहा जाता है। जब हम किसी भी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करते हैं, उस समय उसकी रचना व गुणों में विचित्रता देखते हुए हमें प्रभु की महिमा का भी स्मरण होता है। ऐसा होने पर हम उस वस्तु का ठीक ही प्रयोग करते हैं, उसका अयोग व अतियोग न करके ठीक ही योग करनेवाले बनते हैं। यह यथायोग ही हमारा रक्षण करता है। २. **अस्वप्नः च**=न सो जाना **अनवद्राणः च**=और कुटिल गतिवाला न होना—ये भी **त्वा रक्षताम्**=तेरा रक्षण करें। हम सो न जाएँ, साथ ही गति को कुटिल भी न होने दें। 'सो जाना' तामसी वृत्ति है, 'कुटिलगति' राजसी वृत्ति है। इनसे ऊपर उठकर हम सात्त्विकी वृत्तिवाले बनें। यही वृत्ति हमारा रक्षण करती है। ३. **गोपायन् च**=शरीर का रक्षण करता हुआ यह सात्त्विकभाव **च**=तथा **जागृविः**=जागरित रहना—प्रमादी होकर कर्त्तव्य-कर्मों से विमुख नहीं होना—ये दोनों भाव भी **त्वा रक्षताम्**=तेरा रक्षण करें। हम जीवन-यात्रा में सदा अपना रक्षण करनेवाले तथा नीरोग बनें, जागते हुए रहें, जिससे कामादि शत्रुओं के शिकार न हो जाएँ।

भावार्थ—'बोध-प्रतिबोध', 'अस्वप्न-अनवद्राण' तथा 'गोपायन् और जागृवि' हमारा रक्षण करें। ये क्रमशः 'प्राणापान, मन, बुद्धि और चक्षुर्द्वय' के अभिमानी देव हैं। ये हमारा रक्षण करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**द्विपदासाम्नीभुरिग्बृहती** ॥

तेभ्यः नमः, तेभ्यः स्वाहा (गोपन व रक्षण)

ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा॥ १४॥

१. मन्त्र १३ में कहे गये **ते**=वे छह देव **त्वा रक्षन्तु**=तेरा रक्षण करें, तुझे वासनाओं का शिकार न होने दें। **ते त्वा गोपायन्तु**=वे तेरा रक्षण करें, तुझे नाना प्रकार के रोगों से आक्रान्त न होने दें। **तेभ्यः**=उन 'बोध-प्रतिबोध'आदि के द्वारा सूचित देवों के लिए **नमः**=नमस्कार हो। इन देवों का उचित आदर करते हुए हम स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मनवाले बनें। **तेभ्यः स्वाहा**=उन देवों को अपनाने के लिए हम आत्मत्याग करते हैं (स्व+हा) बिना त्याग के हममें इन देवों का निवास सम्भव नहीं।

भावार्थ—'बोध=प्रतिबोध' आदि देव हमारे 'शरीर व मन' का रक्षण करें। इन देवों को हम आदर दें। 'इन्हें धारण करना' जीवन का लक्ष्य बनाएँ। इनके धारण के लिए स्वार्थ-त्याग करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**प्रस्तारपंक्तिः** ॥

वायु-इन्द्र-धाता-सविता-त्रायमाण

जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि॥ १५॥

१. **त्वा**=तुझे **जीवेभ्यः**=तेरे पोषणीय पुत्र-भार्या-दासादि जीवों के लिए **समुदे**=आनन्द-युक्त जीवन के निमित्त (स+मुदे) **वायुः**=गति द्वारा सब बुराइयों का हिंसन करनेवाला, **इन्द्रः**=शत्रुओं का विद्रावक, **धाता**=सबका धारक, **सविता**=सर्वोत्पादक व सर्वप्रेरक **त्रायमाणः**=रक्षक प्रभु **दधातु**=धारण करे। तू भी 'वायु' बन—गति के द्वारा बुराइयों का संहार करनेवाला बन। 'इन्द्र' जितेन्द्रिय बन, **धाता**=धारण करनेवाला, **सविता**=निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त व **त्रायमाणः**=रक्षक बन। ये बातें ही तेरे जीवन को आनन्दमय बनाएँगी। २. **त्वा**=तुझे **प्राणः**=प्राणशक्ति व **बलम्**=बल **मा हासीत्**=मत छोड़ जाएँ। **ते असुम्**=तेरे प्राण को **अनु ह्वयामसि**=अनुकूलता से पुकारते हैं। तेरे प्राण सचमुच सब दोषों का क्षेपण करते हुए 'असु' इस अन्वर्थ नामवाले हों।

भावार्थ—हम 'वायु, इन्द्र, धाता, सविता व त्रायमाण' प्रभु का उपासन करते हुए 'क्रियाशील,

जितेन्द्रिय, धारक, निर्माण-कार्यों में प्रवृत्त व रक्षक बनें। प्राण व बल हमें न छोड़ जाएँ। हमारे प्राण सब दोषों को दूर करनेवाले हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**प्रस्तारपंक्तिः** ॥

'जम्भ, संहनु, तमस्, जिह्वा व बर्हि' का शिकार न होना

मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः।
उत्त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये॥ १६॥

१. **मा**=मत **त्वा**=तुझे **जम्भः**=(जम्भनं Sexual intercourse) काम-विलास **विदत्**=प्राप्त करे। तू कामोपभोग में न फँस जाए, **संहनुः**=क्रोध में दाँतों का कटकटाना (Clashing) भी मत प्राप्त हो— तू एकदम क्रोध में आपा न खो बैठे। **मा तमः**=(विदत्)=अज्ञानान्धकार भी तुझे प्राप्त न हो। **मा जिह्वा**=जिह्वा तुझे प्राप्त न करे, अर्थात् तू बहुत खाने की वृत्तिवाला न बन जाए। **बर्हिः** (बर्ह् to speak)=तू बहुत बोलनेवाला न हो जाए। ऐसा होने पर **प्रमयुः कथा स्याः**=(प्रगतहिंसः) हिंसा को प्राप्त न होनेवाला तू कैसे हो सकता है? 'काम, क्रोध, अज्ञान, अतिभक्षण व अतिभाषण' की वृत्तियाँ ही विनाश का कारण बनती हैं। २. **त्वा**=तुझे **आदित्याः**=सब ज्ञानों का आदान करनेवाले और **वसवः**=निवास को उत्तम बनानेवाले पुरुष (माता, पिता व आचार्य) **उद् भरन्तु**=जम्भ आदि से ऊपर उठानेवाले हों—तुझे इनका शिकार न होने दें। **इन्द्राग्नी**=इन्द्र और अग्नि—जितेन्द्रियता तथा आगे बढ़ने की भावना तुझे **उत्**=कामादि का शिकार होने से बचाएँ, तेरा उद्धार करें। इसप्रकार ये सब **स्वस्तये**=तेरे कल्याण के लिए हों।

भावार्थ—हम 'काम, क्रोध, अन्धकार (अज्ञान), अतिभुक्ति तथा अतिवोक्ति (बहुत बोलने)' के शिकार न हों। हमें ज्ञानी व हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले माता, पिता, आचार्य काम-क्रोध आदि की वृतियों से ऊपर उठाएँ। हम जितेन्द्रिय व आगे बढ़ने की वृत्तिवाले हों। इसप्रकार हम अपना कल्याण सिद्ध करनेवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

द्यौः—पृथिवी

उत्त्वा द्यौरुत्पृथिव्युत्प्रजापतिरग्रभीत्। उत्त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन्॥ १७॥

१. हे पुरुष! **त्वा**=तुझे **द्यौः**=द्युलोक **उत् अग्रभीत्**=मृत्यु से ऊपर उठाए। द्युलोकस्थ सूर्य रोगकृमि-विनाशक किरणों के द्वारा तुझे नीरोगता प्रदान करे। **पृथिवी उत्**=यह पृथिवी तुझे मृत्यु से ऊपर उठाए। **प्रजापतिः**=प्रजाओं का रक्षक प्रभु **उत्**=तुझे मृत्यु से ऊपर उठाए। यह पृथिवी माता तुझे शरीर-धारण के लिए आवश्यक भोजन दे तथा प्रभु का स्मरण तुझे उन भोगों के अति प्रयोग से बचानेवाला हो। २. ये पृथिवी से उत्पन्न होनेवाली **ओषधयः**=ओषधियाँ **त्वा**=तुझे **मृत्योः**=मृत्यु से **उत् अपीपरन्**=ऊपर उठाकर पालन करनेवाली हों। ये ओषधियाँ **सोम-राज्ञीः**=(सोमस्य पत्न्यः) सोम की पत्नियाँ हैं—सोम इनका रक्षक है। शरीर में इनके द्वारा उत्पन्न होनेवाला सोम शरीर को दीप्त करनेवाला है (राजृ दीप्तौ)।

भावार्थ—द्युलोकस्थ सूर्य व पृथिवी से उत्पन्न होनेवाले भोज्य पदार्थ हमें मृत्यु से बचाएँ। पृथिवी से उत्पन्न होनेवाली ओषधियों से बननेवाले सोम-कण हमारे जीवन को दीप्त बनाए।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

दीर्घजीवन के दो सूत्र

अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः। इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत्पारयामसि॥ १८॥

१. हे **देवाः**=सूर्यादि देवो! **अयम्**=यह पुरुष **इह एव अस्तु**=यहाँ—इस शरीर में ही हो, **इतः**=यहाँ से वह **अमुत्र मा गात्**=परलोक में मत चला जाए। देवों की अनुकूलता में इसका स्वास्थ्य ठीक बना रहे। २. **इमम्**=इसे **सहस्रवीर्येण** (सहस्र सहस्वत्—नि०)=रोगों का मर्षण करनेवाले वीर्य के द्वारा—शरीर में ही वीर्यरक्षण के द्वारा **मृत्योः उत् पारयामसि**=मृत्यु से पार ले-चलते हैं। शरीर में सुरक्षित वीर्य रोगकृमि-विनाश के द्वारा दीर्घजीवन का साधन बनता है।

भावार्थ—दीर्घजीवन के दो सूत्र हैं—(क) सूर्यादि देवों के सम्पर्क में जीवन बिताना और (ख) शरीर में वीर्यशक्ति का रक्षण करना।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अकालमृत्यु पर रोदन

उत्त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः।
मा त्वा व्यस्तकेश्यो३ मा त्वाघरुदो रुदन्॥ १९॥

१. हे आयुष्काम पुरुष! **त्वा**=तुझे **मृत्योः उत् अपीपरम्**=मृत्यु से ऊपर उठाता हूँ, उचित उपायों के द्वारा तुझे मृत्यु से बचाता हूँ। **वयोधसः**=उत्तम अन्न व आयुष्य को धारण करनेवाले देव **सं धमन्तु**=(धयतिर्गतिकर्मा—नि० २।१४) तेरे सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों को ठीक से संगत करें। २. असमय में मृत्यु के कारण **व्यस्तकेश्यः**=बिखरे हुए बालोंवाली बन्धु-योषाएँ (स्त्रियाँ) **त्वा मा रुदन्**=तेरा रोना न रोएँ तथा **अघरुदः**=मृत्युरूप व्यसन के कारण रोनेवाले ये बान्धव **त्वा मा** (रुदन्)=तेरी मृत्यु पर रोनेवाले न बनें। असमय की मृत्यु रोदन का कारण बनती ही है।

भावार्थ—हम अकाल मृत्यु से न मरें, जिससे बन्धु-बान्धवों को हमारी मृत्यु पर रोना-धोना न पड़े।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पुनः नवः

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम्॥ २०॥

१. हे मृत्युग्रस्त पुरुष! **आहार्षं त्वा**=मैं तुझे मृत्यु के मुख से बाहर ले-आया हूँ। मृत्युमुख से ऊपर उठाकर मैंने **अविदम्**=तुझे पाया है। **पुनः आगाः**=तू पुनः हमारे बीच में आ गया है। **पुनः नवः**=तू फिर नवीन हो उठा है—तूने नवजीवन पाया है। २. हे **सर्वाङ्ग**=सब स्वस्थ अङ्गोंवाले पुरुष! **ते सर्वं चक्षुः**=तेरी पूर्ण स्वस्थ चक्षु को—पूर्ण स्वस्थ इन्द्रियों को **च**=तथा **सर्वं आयुः अविदम्**=शतसवंत्सरलक्षण-पूर्ण जीवन को मैंने पाया है।

भावार्थ—हम रोगों से ऊपर उठकर पूर्ण स्वस्थ इन्द्रियोंवाले व पूर्ण शतसंवत्सरमित जीवनवाले हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'निर्ऋति, यक्ष्म व मृत्यु' का निराकरण

व्य वात्ते ज्योतिरभूदप त्वत्तमो अक्रमीत्।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि॥ २१॥

१. हे संज्ञाविहीन पुरुष! **ते**=तेरे लिए **वि अवात्**=यह विशिष्ट वायु का प्रवाह बहा है। तेरी मूर्च्छा दूर हो गई है और **ज्योतिः अभूत्**=प्रकाश-ही-प्रकाश हो गया है। **त्वम्**=तुझसे **तमः अप अक्रमीत्**=अन्धकार सुदूर चला गया है। २. **त्वत्**=तुझसे **मृत्युम्**=मृत्यु को तथा **निर्ऋतिम्**=मृत्यु

की कारणभूत दुर्गति को **अप निदध्मसि**=दूर स्थापित करते हैं। मृत्यु के निवारण के लिए ही **यक्ष्मम्**=सब रोगों को **अप** (निदध्मसि)=दूर स्थापित करते हैं।

भावार्थ—दुराचार में फँसने पर रोगों से आक्रान्त होकर मनुष्य मृत्यु का शिकार हो जाता है, अतः हम दुराचार व रोगों को दूर करके मृत्यु को दूर करते हैं।

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

अमृत की श्नुष्टि

आ र॑भस्वे॒माम॒मृत॑स्य॒ श्नुष्टि॒मच्छि॑द्यमाना ज॒रद॑ष्टिरस्तु ते।
असुं॑ त॒ आयुः॒ पुन॒रा भ॑रामि॒ रज॒स्तमो॒ मोप॑ गा॒ मा प्र मे॑ष्ठाः ॥ १ ॥

१. **इमाम्**=इस **अमृतस्य श्नुष्टिम्**=(यज्ञशेषम् अमृतम्) यज्ञशेषरूप अमृत भोजन को **आरभस्व**= प्रारम्भ कर ('श्नुसु अदने'—जयदेव)—यज्ञशेष का सेवन करनेवाला बन। इस यज्ञशेष के सेवन से **ते**=तेरे लिए **अच्छिद्यमाना**=किन्हीं भी रोगादि से विच्छिन्न न की जाती हुई **जरदष्टिः अस्तु**=जरावस्था की प्राप्ति (अश् व्याप्तौ) हो—तू पूर्ण जीवन को प्राप्त करनेवाला बन। २. **ते**=तुझे **असुम्**=प्राण को तथा **आयुः**=दीर्घजीवन को **पुनः आभरामि**=फिर से प्राप्त कराता हूँ। तू **रजः तमः**=रजोगुण व तमोगुण को **मा उपगाः**=समीपता से मत प्राप्त हो। तेरा झुकाव राजस् व तामस् न होकर सात्त्विक हो। 'प्रमाद, आलस्य व निद्रा' से जहाँ तू ऊपर उठे, वहाँ प्रतिक्षण की अशान्ति व तृष्णा से भी दूर हो। इसप्रकार तू **मा प्रमेष्ठाः**=हिंसा को मत प्राप्त हो।

भावार्थ—हम यज्ञशेष का सेवन करते हुए दीर्घजीवी बनें। राजस् व तामस् वृत्तियों से ऊपर उठकर हम हिंसित न हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

मृत्युपाश-अवमोचन

जीव॑तां॒ ज्योति॑र॒भ्येह्य॒र्वाङा त्वा॑ हरामि श॒तशा॑रदाय।
अ॒व॒मु॒ञ्चन्मृ॑त्युपा॒शानश॑स्तिं॒ द्राघी॑य॒ आयुः॑ प्र॒तरं॑ ते॑ दधामि ॥ २ ॥

१. गतमन्त्र के अनुसार सात्त्विक वृत्तिवाला बनने पर तू **जीवतां ज्योतिः अभि एहि**=जीवित पुरुषों की ज्योति को आभिमुख्येन प्राप्त हो। **अर्वाङ् त्वा आहरामि**=(within) तुझे अन्दर की ओर प्राप्त कराता हूँ। जीवन-नदी के इस किनारे—न कि परले किनारे तुझे प्राप्त कराता हूँ। इससे तू **शतशारदाय**=सौ वर्ष के दीर्घजीवन को प्राप्त करनेवाला हो। २. **मृत्युपाशान्**=तू मृत्यु के पाशों को ज्वर, शिरोरोग आदि नानाविध मृत्यु-जालों तथा **अशस्तिम्**=प्रत्येक निन्दित (अप्रशस्त) अवगुण को **अवमुञ्चन्**=छोड़नेवाला हो। **ते**=तेरे लिए **द्राघीयः**=अतिशयेन दीर्घ **प्रतरम्**=प्रकृष्टतर **आयुः**=जीवन को **दधामि**=स्थापित करता हूँ।

भावार्थ—हम सात्त्विक वृत्तिवाले बनकर जीवन-शक्तियुक्त ज्योति को प्राप्त करें, जीवन के परले किनारे न पहुँच जाएँ। रोगादि मृत्युपाशों को परे फेंकते हुए प्रकृष्ट दीर्घजीवन को प्राप्त करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**आस्तारपंक्तिः** ॥

'शुद्धवायु व सूर्यकिरणों' का सेवन

वाता॑त्ते प्रा॒णम॑विदं॒ सूर्या॒च्चक्षु॑र॒हं तव॑।
यत्ते॒ मन॒स्त्वयि॒ तद्धा॑रयामि॒ सं वि॒त्स्वाङ्गै॒र्वद॑ जि॒ह्वया॑ल॑पन् ॥ ३ ॥

१. मैं **वातात्**=वायु से **ते प्राणम् अविदम्**=तुझे प्राणशक्ति प्राप्त कराता हूँ। **अहम्**=मैं

सूर्यात्=सूर्य से **तव चक्षुः**=तुझे दृष्टिशक्ति प्राप्त कराता हूँ। वायु व सूर्य के सेवन से तू प्राणशक्ति-सम्पन्न व दृष्टिशक्ति-सम्पन्न बन। **यत्ते मनः**=जो तेरा मन है **तत्**=उसे **त्वयि धारयामि**=तुझमें धारण करता हूँ, तेरा मन सदा भटकता ही न रहे। **अङ्गैः संवित्स्व**=तू अङ्गों से सम्यक् युक्त हो (विद् लाभे) **जिह्वया**=जिह्वा से **आलपन्**=उच्चारण करता हुआ **वद**=सम्यक्तया वाणी को प्रेरित कर। तेरे बोलने से तेरी जीवन-शक्ति प्रकट हो।

भावार्थ—शुद्ध-वायु का सेवन व सूर्यकिरणों का सम्पर्क प्राणशक्ति को तथा इन्द्रियों के स्वास्थ्य को प्राप्त कराते हैं। मन की स्थिरता भी दीर्घजीवन का साधन बनती है। स्वस्थ पुरुष के भाषण में जीवन-शक्ति प्रकट होती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**प्रस्तारपंक्तिः** ॥

इन्द्रियों व प्राणों को दीप्त बनाना

प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम्॥ ४॥

१. प्रभु कहते हैं कि **इव**=जैसे (जातम्) **अग्निम्**=उत्पन्न अग्नि को फूँक आदि द्वारा दीप्त करते हैं, उसी प्रकार **द्विपदाम्**=दोपाये व **चतुष्पदाम्**=चौपाये पशुओं में **जातम्**=उत्पन्न हुए-हुए तुझे **प्राणेन अभिसंधमामि**=प्राणशक्ति द्वारा संधमात करता हूँ—दीप्त करता हूँ। २. जीव उत्तर देता हुआ कहता है कि हे **मृत्यो**=अन्ततः सबका प्राणान्त करनेवाले प्रभो! **ते चक्षुषे नमः**=आपसे दी गई इन चक्षु आदि इन्द्रियों के लिए हम आपको नमस्कार करते हैं। **ते प्राणाय नमः अकरम्**=आपसे दिये गये इन प्राणों के लिए हम आपको नमस्कार करते हैं। हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि आपसे दी गई इन चक्षु आदि इन्द्रियों को तथा आपसे दिये गये इन प्राणों को हम ठीक रक्खें—इनकी शक्ति में क्षीणता न आने दें।

भावार्थ—प्रभु प्रत्येक प्राणी को प्राणों द्वारा दीप्त जीवनवाला बनाते हैं। हमारा मूल कर्त्तव्य यही है कि हम प्रभु-प्रदत्त इन्द्रियों व प्राणों को स्वस्थ रक्खें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

रोग का प्रारम्भ में ही प्रतीकार

अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि। कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः॥ ५॥

अयं जीवतु=यह रुग्ण पुरुष जीये, **मा मृत**=मरे नहीं। हम **इमं समीरयामसि**=इसे प्राणशक्ति से प्रेरित करते हैं। प्राणशक्ति-सम्पन्न होकर यह सब चेष्टाएँ ठीक प्रकार से करे, ऐसी व्यवस्था करते हैं। **अस्मै भेषजं कृणोमि**=इसके लिए औषध करता हूँ। हे **मृत्यो**=मृत्यु! तू **पुरुषं मा वधीः**=इस पुरुष को मत मार। 'वस्तुतः' रोग को आरम्भ में ही औषधोपचार से दूर कर दिया जाए' तभी ठीक है।

भावार्थ—रोग को आरम्भ में ही औषधोपचार से ठीक कर दिया जाए तो उत्तम है, जिससे रोगवृद्धि होकर मृत्यु का भय न रहे।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**पथ्यापंक्तिः** ॥

जीवन्ती ('पाठा' ओषधि)

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये॥ ६॥

१. **जीवलाम्**=जीवन-शक्ति देनेवाली, **नघारिषाम्**=(न घा रिषाम्) निश्चय से हिंसित न

करनेवाली **जीवन्तीम्**=(कदाचित् अपि अशुष्काम्) स्वयं सदा हरी भरी, जीवित रहनेवाली सजीवा **ओषधीम्** ओषधि को **अस्मै**-इस पुरुष के लिए मैं **हुवे**=पुकारता हूँ। २. इस **त्रायमाणाम्**-रक्षा करनेवाली—सेवन करनेवालों का रोगपरिहार द्वारा रक्षण करनेवाली **सहमानाम्** रोगों का अभिभव करनेवाली, **सहस्वतीम्**-बलवाली इस 'पाठा व सहदेवी' नामक ओषधि को **इह** यहाँ रोग विनाशरूप कर्म में **अरिष्टतातये** अहिंसन के लिए (स्वार्थे ताति प्रत्ययः) हम पुकारते हैं।

भावार्थ—यह जीवन्ती (पाठा, सहदेवी) नामक ओषधि हमें मृत्यु से ऊपर उठाकर जीवन देनेवाली बनती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

भवाशर्वौ

अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥ ७ ॥

१. उत्तर मन्त्र का 'मृत्यो' यह सम्बोधन यहाँ भी सम्बद्ध होता है। हे मृत्यो! **अधिब्रूहि**-तू इसके लिए आधिक्येन उपदेश देनेवाला हो। तेरा स्मरण इसे उत्तम प्रेरणा प्राप्त कराए। **मा रभथाः**-तू इसका आलिङ्गन मत कर (रभ् to clasp, embrace) **सृज इमम्** इसे तू छोड़ ही दे अथवा तू इसका उत्तम निर्माण कर। **तव एव सन्**-तेरा ही होता हुआ यह—सदा तेरा चिन्तन (न कि चिन्ता) करता हुआ यह **इह**-यहाँ—इस जीवन में **सर्वहायाः अस्तु**-(ओहाङ् गतौ) पूर्ण वर्षों तक चलनेवाला हो। यह शतवर्ष के जीवनवाला हो। २. **भवाशर्वौ**-भव और शर्व—उत्पत्ति तथा प्रलय के देव—दोनों ही **मृडतम्**-इसपर अनुग्रह करें। यह उत्पत्ति और मृत्यु का विचार करता हुआ जीवन में मार्ग से न भटके और इसप्रकार सुखी जीवनवाला हो। **शर्म यच्छतम्**-ये भव और शर्व इसे सुख दें और **दुरितम्**=दुराचरण को **अपसिध्य**-दूर करके **आयुः धत्तम्**=इसे दीर्घजीवन प्राप्त कराएँ।

भावार्थ—मृत्यु का चिन्तन हमें सत् प्रेरणा देनेवाला हो। इसप्रकार हम सन्मार्ग पर चलते हुए असमय में ही मृत्यु का शिकार न हो जाएँ। उत्पत्ति और प्रलय का चिन्तन हमें दुरितों से दूर करके सन्मार्ग में प्रेरित करे और पूर्ण दीर्घजीवन प्राप्त कराए।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**पुरस्ताज्ज्योतिष्मतीजगती** ॥

आत्मना भुजम् अश्नुताम्

अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितो३ऽयमेतु।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥ ८ ॥

१. हे **मृत्यो**-मृत्यु के अधिष्ठातृदेव! **अस्मै**-इस पुरुष के लिए **अधिब्रूहि**=तू आधिक्येन उपदेश देनेवाला हो। **इमं दयस्व**-इसे तू सुरक्षित कर। **अयं इतः उत् एतु**=यह मृत्यु के कारणभूत रोगादि से उद्गत हो—यह रोगाक्रान्त न हो जाए। २. **अरिष्टः**-रोगों से अहिंसित होता हुआ यह **सर्वाङ्गः**-चक्षु आदि सब अङ्गों से युक्त हुआ-हुआ **सुश्रुत्**-उत्तम श्रवणशक्तिवाला, **जरसा शतहायनः**-वृद्ध अवस्था से पूरे सौ वर्ष तक चलनेवाला **आत्मना भुजम् अश्नुताम्**-अनन्यापेक्ष होता हुआ, स्वयं अपनी शक्ति से ही सब भोगों को भोगनेवाला हो।

भावार्थ—मृत्यु के स्मरण से हम सन्मार्ग पर चलें, रोगादि से आक्रान्त न हों, पूरे सौ वर्ष तक चलते हुए भी हम पराश्रित न हों, दूसरों के सहारे जीनेवाले न हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाजगती** ॥

परिधि

देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत्त्वा मृत्योरपीपरम्।
आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि॥ ९॥

१. **देवानां हेतिः**=देवों का अस्त्र **त्वा परिवृणक्तु**-तुझे दूर से छोड़ जाए—तेरी हिंसा करनेवाला न हो। मैं **त्वा**=तुझे **रजसः पारयामि**=रजोगुण से पार करता हूँ। तृष्णा से ऊपर उठा हुआ तू पाप-मार्ग की ओर नहीं जाता **उत्**=और **त्वा**=तुझे **मृत्योः अपीपरम्**=मृत्यु से भी पार करता हूँ, बचाता हूँ। पाप ही तो मृत्यु का कारण बनता है। २. मैं **क्रव्यादं अग्निम्**-कच्चा मांस खा जानेवाले कामाग्नि को **आरात् निरूहम्**= सुदूर प्राप्त कराता हूँ—तुझसे बहुत दूर फेंकता हूँ। **ते जीवातवे**=तेरे जीवन के लिए **परिधिं दधामि**=प्राकार की स्थापना करता हूँ—मर्यादा की स्थापना करता हूँ। मर्यादा ही वह प्राकार है जो हमें मृत्यु से बचाता है।

भावार्थ—हमें सूर्यादि देवों की अनुकूलता प्राप्त हो तथा हम राजस् वृत्तियों से ऊपर उठकर नीरोग जीवनवाले हों, हम कामाग्नि से न जलाये जाएँ, दीर्घजीवन के लिए मर्यादारूप प्राकार के द्वारा हम जीवन को सुरक्षित करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'ब्रह्म' वर्म

यत्ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यं ꣳम्।
पथ इमं तस्माद्रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि॥ १०॥

१. हे **मृत्यो**=मृत्यु के देव! **यत्**=जो **ते**=तेरा **नियानम्**=(नियान्ति अत्र) मार्ग है, वह **रजसम्**=राजस्—रजोगुण की वृत्तियों से बना हुआ है। 'ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध'—ये सब रजोगुण की वृत्तियाँ मृत्यु की ओर ले-जानेवाली हैं। **अनवधर्ष्यम्**=इस मृत्यु के मार्ग का किसी से भी धर्षण नहीं किया जा सकता। २. **इमम्**=इस व्यक्ति को **तस्मात् पथः**=उस मार्ग से **रक्षन्तः**-रक्षित करते हुए हम **अस्मै**=इस पुरुष के लिए **ब्रह्म वर्म कृण्मसि**-ज्ञानरूप कवच देते हैं। इस कवच को धारण कर लेने पर यह राजस् वृत्तियों के—ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध के आक्रमण से बचा रहता है।

भावार्थ—हम ज्ञान के कवच को धारण करके ईर्ष्या-द्वेष व क्रोध के आक्रमण से बचे रहें और दीर्घजीवी बन पाएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**विष्टारपंक्तिः** ॥

जरामृत्युम्, दीर्घम् आयुः, स्वस्ति

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति।
वैवस्वतेन प्रहितान्यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान्॥ ११॥

१. हे पुरुष! **ते**=तेरे लिए **प्राणापानौ**=इस प्राण और अपान को **कृणोमि**=करता हूँ। प्राणापान को मैं तुझमें स्थापित करता हूँ। इस प्राणापान के द्वारा तेरी **जरां मृत्युम्**=जीर्णता व मृत्यु को भी (कृणोमि-to kill) नष्ट करता हूँ। तेरे लिये **दीर्घम् आयुः**-दीर्घजीवन हो और **स्वस्ति**=कल्याण हो। २. **वैवस्वतेन**= विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र इस काल से **प्रहितान्**=भेजे हुए **चरतः**=गति करते हुए 'दिन-रात्रि, मास व ऋतु' रूप कालविभागात्मक **सर्वान् यमदूतान्**=यम (मृत्यु के देवता) के सब दूतों को **अपसेधामि**- आयुष्य-खण्डनरूप कार्य से दूर करता हूँ। ये दिन व रात तुझे जीर्ण नहीं कर पाते।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा हम जीर्णता व मृत्यु से ऊपर उठकर दीर्घजीवन व कल्याण प्राप्त करें। निरन्तर चलते हुए ये दिन-रात आदि कालविभाग हमें जीर्ण करनेवाले न हों। प्राणसाधना द्वारा हमारी शक्तियों का विकास ही हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**पुरस्ताद्बृहती** ॥

यमदूत

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्।
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तमइवाप हन्मसि॥ १२ ॥

१. हम **अरातिम्**=न देने की वृत्ति को—कृपणता को **आरात् अपहन्मसि**-अपने से दूर विनष्ट करते हैं। अदान की वृत्ति हमें भोगप्रवण बनाती है। यह भोगप्रवणता मृत्यु की ओर ले जाती है। **निर्ऋतिम्**-'**यत्रैतत् कुलं कलही भवति तन्निर्ऋतिगृहीतमित्याचक्षते**' (कौ० सू० ९७।१) जिस कुल में कलह होता है, उस कुल को निर्ऋति ग्रहीत कहते हैं। अविद्यामय कलहप्रवृत्ति को दूर करते हैं। घर में हर समय का कलह विनाश का कारण बनता ही है। **ग्राहिम्**-ग्रहणशीला लोभवृत्ति को भी अपने से **परः** (अपहन्मसि)-दूर भगाते हैं। लोभवृत्ति में मनुष्य धन को लेता और लेता ही चला जाता है। धन ही उसके जीवन का उद्देश्य बन जाता है। यही अन्ततः उसके निधन का कारण बनता है। **क्रव्यादः**-मांस को खा जानेवाली **पिशाचान्** पैशाचिक (राक्षसी) कामवृत्तियों को भी दूर करते हैं। ये कामवृत्तियाँ हमें क्षीण करके (Emaciated) विनष्ट कर डालती हैं। २. **यत्** जो **दुर्भूतम्**-दुष्ट स्थिति को प्राप्त होनेवाला (दुष्टत्वम् आपन्नम्) राक्षसीभाव है, **तत् सर्वम्**-उन सब दुष्ट **रक्षः** राक्षसीभावों को **तमः इव** (अपहन्मसि)-इसप्रकार दूर करते हैं, जैसेकि प्रकाश के द्वारा अन्धकार को दूर किया जाता है।

भावार्थ—'न देने की वृत्ति (अदानशीलता), परस्पर कलह (निर्ऋति), लोभ (ग्राही), कामवृत्तियाँ (क्रव्यादः पिशाचान्) तथा सब राक्षसीभाव'—ये ही यमदूत हैं। इन्हें अपने से दूर रखना ही ठीक है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अमृत सजूः असः

अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत्ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम्॥ १३ ॥

१. पुरोहित यजमान से कहता है कि हे पुरुष! मैं **ते** तेरे लिए **अग्नेः** उस अग्रणी प्रभु से **प्राणं वन्वे**-प्राणशक्ति की याचना करता हूँ। उन प्रभु से जो **अमृतात्**-अमृत हैं, जिनकी उपासना में मृत्यु है ही नहीं, **आयुष्मतः** जो प्रशस्त आयुष्य को प्राप्त करानेवाले हैं, **जातवेदसः**-जो सर्वज्ञ हैं। २. मैं **ते**-तेरे लिए **तत् कृणोमि** उन कर्त्तव्य-कर्मों को—प्राणसाधनादि नित्य कर्मों को उपदिष्ट करता हूँ, **यथा न रिष्याः**-जिससे तू हिंसित न हो—रोगादि तुझपर आक्रमण न कर पाएँ। **अ-मृतः**=तेरा जीवन नीरोग हो। **सजूः असः**=तू उस परमात्मा के साथ होनेवाला हो, तू प्रभुस्मरणपूर्वक कर्त्तव्य कर्मों को करनेवाला हो, **उ**-और **ते** तेरे लिए **तत्**-ये सब कर्म **समृध्यताम्**=समृद्धि का कारण बनें।

भावार्थ—हम प्राणसाधनों द्वारा नीरोग दीर्घजीवन प्राप्त करें। रोगादि से हिंसित न होते हुए 'अमृत' हों, असमय में ही मृत्यु का शिकार न हो जाएँ। प्रभु की उपासना में चलते हुए हम समृद्ध जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**त्र्यवसानाषट्पदाजगती** ॥

सब देवों की अनुकूलता

शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असन्तापे अभिश्रियौ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः॥ १४॥

१. **ते**-तेरे लिए **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक **शिवे**=कल्याकारी, **असन्तापे**=सन्ताप को दूर करनेवाले व **अभिश्रियौ**-तुझे मस्तिष्क व शरीर में भी श्री प्राप्त करानेवाले **स्ताम्**-हों। **सूर्यः**-सूर्य भी **ते**=तेरे लिए **शं आतपतु**=शान्तिकर होकर तपे। **वातः**-वायु भी ते **हृदे** तेरे हृदय के लिए **शं वातु**=शान्तिकर होकर बहे। २. **त्वा**=तेरे प्रति **दिव्याः**-द्युलोक में होनेवाले **पयस्वतीः**-प्रशस्त आप्यायन शक्तियों से युक्त **आपः**-जल **शिवाः अभिक्षरन्तु** कल्याणकर होकर क्षरित हों—बहें।

भावार्थ—सब बाह्य जगत् हमारे लिए अनुकूलतावाला हो, जिससे हम स्वस्थ रहते हुए निरन्तर आगे बढ़ पाएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**पथ्यापंक्तिः** ॥

व्रीहि, पर्वतभूमि व सूर्यचन्द्र का सम्पर्क

शिवास्ते सन्त्वोषधय उत्त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा॥ १५॥

हे कुमार! **ते**=तेरे लिए **ओषधयः**=आहारार्थ उपयुज्यमान व्रीहि आदि ओषधियाँ **शिवाः सन्तु**-कल्याणकर हों। मैं **त्वा**=तुझे **अधरस्याः**=नीची व हीन गुणवाली पृथिवी से **उत्तरां पृथिवीम् अभि**-उत्कृष्ट गुणवाली, ऊँची व स्वच्छ वायु से पूर्ण पर्वतभूमि में **उत् अहार्षम्**-ऊपर ले-आता हूँ। **तत्र**=वहाँ **त्वा**=तुझे **उभा**=दोनों **आदित्यौ**=(अदितेः पुत्रौ) स्वास्थ्य को पवित्र (पु) व रक्षित करनेवाले (त्र) **सूर्याचन्द्रमसौ**=सूर्य और चन्द्रमा **रक्षताम्**=रक्षित करें।

भावार्थ—नीरोगता व दीर्घजीवन के तीन साधन हैं—(क) व्रीहि (चावल) आदि ओषधियों का सेवन, (ख) ऊँचे स्थल (पर्वत) पर निवास, (ग) सूर्य व चन्द्र के प्रकाश में रहना, खुले में रहना।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अद्रूक्षण 'वस्त्र'

यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम्।
शिवं ते तन्वे३ तत्कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्षणमस्तु ते॥ १६॥

१. हे बालक! **यत् ते वासः परिधानम्**=जो तेरा उपरि आच्छादनीय वस्त्र है—उपरले शरीर में पहनने योग्य है, **याम्**=जिसे **त्वम्**=तू **नीविं कृणुषे**-नाभिदेश से सम्बद्ध वस्त्र बनाता है, अर्थात् जो तेरा मध्यदेशाच्छादन वस्त्र है, **तत्**-उन दोनों प्रकार के वस्त्र को **ते तन्वे**=तेरे शरीर के लिए **शिवे कृण्मः**-सुखकर करते हैं। वह वस्त्र **संस्पर्शे**=स्पर्श के विषय में **ते**-तेरे लिए **अद्रूक्षणम्**=रूखा न हो—मार्दव लिये हुए **अस्तु**=हो।

भावार्थ—उपरिवस्त्र व अधोवस्त्र हमारे लिए कल्याणकर हों। वे कठोर स्पर्शवाले न हों। वस्त्र स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से धारण किये जाएँ।

ऋषिः—ब्रह्मा॥ देवता—आयुः॥ छन्दः—त्रिपादनुष्टुप्॥

केशवपन

यत्क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः॥ १७॥

हे संस्कारक पुरुष! **यत्**-जब **वप्ता**=केशों का छेत्ता नापित होता हुआ तू **मर्चयता**=अपना व्यापार करनेवाले **सुतेजसा**=सम्यक् तीक्ष्णता से युक्त **क्षुरेण**-उस्तरे से **केशश्मश्रु**-सिर के व दाढ़ी-मूछों के बालों को **वपसि**=काट डालता है, तब **मुखं शुभम्**-मुख को शुभ बना दे और **नः**-हमारी **आयुः**=आयु को **मा प्रमोषीः**-नष्ट करनेवाला न हो।

भावार्थ—हे लोगो! तुम तीक्ष्ण, स्वच्छ धारवाले उस्तरे से बाल बनवाओ। सिर के व मुख के बाल बनवाकर सुन्दर मुखवाले होओ। नाई की असावधानी तुम्हारे आयुष्य की कमी का कारण न बने।

ऋषिः—ब्रह्मा॥ देवता—आयुः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

व्रीहि-यवौ

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः॥ १८॥

१. हे अन्न का ग्रहण करनेवाले पुरुष! **ते**=तेरे लिए अन्नत्वेन कल्पित **व्रीहियवौ**=चावल और जौ **शिवौ स्ताम्**-सुखकर हों, **अ-बल असौ**-शरीर बल को परे फेंकनेवाले न हों (अस् क्षेपणे), अर्थात् बल की वृद्धि करनेवाले हों अथवा **'अ बलासौ'**-कष्टकर न हों। **अदोमधौ**=(अद् मधु) खाने में सुखकारी व मधुर प्रतीत हों। २. **एतौ**-ये दोनों **यक्ष्मम्**-शरीरगत रोग को **वि बाधेते**-विशेषरूप से पीड़ित करते हैं। **एतौ**=ये व्रीहि और यव **अंहसः मुञ्चतः**-मानस व शारीर-पापों व पीड़ाओं से छुड़ाते हैं।

भावार्थ—व्रीहि और यव का प्रयोग हमारे दोषों को दूर करके शरीर में बल के आधान द्वारा हमें नीरोगता प्रदान कर कष्टमुक्त करें।

ऋषिः—ब्रह्मा॥ देवता -आयुः॥ छन्दः—उपरिष्टाद्बृहती॥

कृष्याः धान्यं, पयः

यदश्नासि यत्पिबसि धान्यं कृष्याः पयः।
यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि॥ १९॥

यत्-जो तू **कृष्याः धान्यं अश्नासि**-कृषि के द्वारा उत्पन्न धान्य खाता है और **यत् पयः पिबसि**-जो दूध व जल पीता है, **यत्**-जो अन्न **आद्यम्**-सुखेन भक्षणीय है, **यत्**-और जो **अनाद्यम्** न खाने योग्य अति कठिन द्रव्य है अथवा अत्यन्त कटु व तिक्त होने से अनाद्य है, उस **ते**-तेरे **सर्वम्** सब **अन्नम्**-अन्न को **अविषं कृणोमि**-निर्विष—अमृत करता हूँ।

भावार्थ—हम कृषि से उत्पन्न—भूमिमाता से दिये गये अन्न को खाएँ, दूध ही पीएँ। जो कोमल व कठोर पदार्थ हम खाएँ वे विषैले प्रभाव उत्पन्न न करके हमें नीरोग बनानेवाले हों।

ऋषिः—ब्रह्मा॥ देवता—आयुः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

अरायेभ्यः जिघत्सुभ्यः

अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि। अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत॥ २०॥

१. हे कुमार! **त्वा**-तुझे **अह्ने**=दिन के लिए, **रात्रये च**-और रात्रि के लिए **उभाभ्याम्**-इन

दोनों दिन व रात के लिए **परिदद्मसि**-रक्षा के लिए देते हैं। दिन व रात में तेरा जीवन सदा सुरक्षित हो। २. **अरायेभ्यः**=अधनों (निर्धनों) से व धन के अपहर्ता डाकूओं से तथा **जिघत्सुभ्यः**=खाने की इच्छावाले भक्षक **रक्षः**=पिशाचादि से **मे इमं परिरक्षत**=मेरे इस बालक का तुम परिरक्षण करो अथवा हिंसक पशुओं से इसका परिरक्षण करो।

भावार्थ—हमारे कुमार दिन व रात में सुरक्षित जीवन बिता सकें। मार्गों में इन्हें लुटेरों व हिंसक पशुओं से किसी प्रकार का भय न हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**सतःपंक्तिः** ॥

शतं, अयुतं, द्वे युगे (कृण्मः)

शतं तेऽ युतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वेदेवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः॥ २१॥

१. हे युवक! **ते शतं हायनान् कृण्मः**=तेरे जीवन को सौ वर्षों का बनाते हैं। इन वर्षों को **अ=युतं (कृण्मः)**=अपृथक् रूप से करते हैं, अर्थात् तुम इन वर्षों में परस्पर एक-दूसरे से पृथक् न होओ। इसप्रकार पति-पत्नी का एक युग (जोड़ा) बनता है। अब सन्तानों के होने पर **द्वे युगे**=लड़की-लड़के का दूसरा युग होता है। हम तेरे इस दूसरे युग को करते हैं। इसीप्रकार **त्रीणि**=तीन व **चत्वारि**=चार युगों को करते हैं। पुत्र-पौत्रादि के द्वारा अनेक युगलों को करते हैं। २. **इन्द्राग्नी**=इन्द्र और अग्नि तथा **विश्वेदेवाः**-सब देव **अहृणीयमानाः**=किसी प्रकार का क्रोध न करते हुए **अनुमन्यन्ताम्**=तेरे दीर्घजीवन, पत्नी से अवियुक्त जीवन तथा सन्तान-युगलों से सम्पन्न जीवन को अनुमत करें, अर्थात् तू 'इन्द्र'—जितेन्द्रिय बनता हुआ, 'अग्नि'—आगे बढ़ने की भावनावाला होता हुआ तथा **विश्वेदेवाः**-सब दिव्य गुणोंवाला होता हुआ इस दीर्घ व सन्तति-समृद्ध जीवनवाला बन।

भावार्थ—प्रभु कहते हैं कि हम तेरे लिए 'सौ वर्ष का साथी से अवियुक्त, सन्तति से सम्पन्न जीवन देते हैं। तू जितेन्द्रिय, प्रगति की भावनावाला व दिव्यगुण सम्पन्न' बनकर उल्लिखित जीवन को प्राप्त कर।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**पुरस्ताद्बृहती** ॥

ऋतुओं की अनुकूलता

शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः॥ २२॥

१. हे बालक! हम **त्वा**=तुझे **शरदे**=शरद ऋतु के लिए, इसी प्रकार **हेमन्ताय**=हेमन्त के लिए, **वसन्ताय**=वसन्त के लिए तथा **ग्रीष्माय**-ग्रीष्म के लिए **परिदद्मसि**=देते हैं—सौंपते हैं। ये सब ऋतुएँ तेरे जीवन का रक्षण करनेवाली हों। २. **वर्षाणि**=वर्षाऋतु के दिन भी **तुभ्यं स्योनानि**—तेरे लिए सुखकर हों। वे वर्षा ऋतु के दिन, **येषु**=जिनमें कि **ओषधीः वर्धन्ते**=ओषधियाँ वृद्धि को प्राप्त होती हैं। वे वृष्टि के दिन अपनी बढ़ी हुई ओषधियों से तेरे लिए सुखकर हों।

भावार्थ—हमें सब ऋतुओं की अनुकूलता प्राप्त हो, जिससे हम स्वस्थ 'शरीर, मन व बुद्धि'-वाले बने रहें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्राणीरूप गौओं का मृत्युरूप गोपाल

मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्। तस्मात्त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्धरामि स मा बिभेः॥ २३॥

१. **द्विपदाम्**-दो पाँववाले मनुष्य, पक्षी आदि का **मृत्युः ईशे** सर्वप्राणिसंहर्ता देव ईश है तथा **चतुष्पदां मृत्युः ईशे**-चार पाँववाले गौ, अश्व आदि पशुओं का भी मृत्यु ईश है। कोई भी प्राणधारी मृत्यु का अतिक्रमण नहीं कर सकता। २. **तस्मात्**-उस **गोपतेः**-प्राणीरूप गौओं के गोपालरूप **मृत्योः** मृत्यु से **त्वा उद् भरामि** तेरा उद्धार करता हूँ। **सः मा बिभेः** वह तू भयभीत न हो। मृत्यु-भय ही वस्तुतः असमय की मृत्यु का कारण बन जाता है।

भावार्थ—मृत्यु सब प्राणियों का ईश है। प्राणी गौएँ हैं तो यह मृत्यु 'गोपति' है। मृत्यु का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

न मृत्यु, न अधमं तमः

सो ऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः॥ २४॥

१. हे **अरिष्ट**-रोगादि से की जानेवाली हिंसा से रहित पुरुष! **सः**-वह तू **न मरिष्यसि**-मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा, **न मरिष्यसि**=निश्चय ही तू मरने नहीं लगा, इसलिए **मा बिभेः** डर मत। २. **तत्र**-वहाँ जहाँ कि 'ब्रह्म' को परिधि (रक्षक) बनाया जाता है, **वै**-निश्चय से लोग **न म्रियन्ते** असमय में मृत्यु का शिकार नहीं होते और **अधमं तमः** मरणकालीन दुःसह मूर्च्छा को भी **नो यन्ति**-नहीं प्राप्त होते अथवा मृत्यु के बाद अन्धतमस् से आवृत असुर्य लोकों को प्राप्त नहीं होते।

भावार्थ—हम रोगादि से हिंसित न होने पर असमय में मृत्यु का शिकार न होंगे। 'ब्रह्म' को अपनी परिधि बनाने पर न असमय में मरेंगे, न ही अन्धकारमय लोकों को प्राप्त होंगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ब्रह्मरूप परिधि

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्॥ २५॥

१. **यत्र** जहाँ **इदं ब्रह्म**=यह ब्रह्मज्ञान व प्रभु **कं जीवनाय**-सुखपूर्वक जीवन के लिए **परिधिः क्रियते**-प्राकार के रूप में कर लिया जाता है, **तत्र** वहाँ **वै**-निश्चय से **सर्वः**-सब **जीवति** जीवित रहते हैं **गौः अश्वः पुरुषः पशुः**=गौ, घोड़े, पुरुष व अन्य पशु—सबका यह ब्रह्म रक्षक होता है। प्रभु का विस्मरण व ज्ञान की प्रवृत्ति का न होना ही भोग-विलास की ओर झुकाव करके मृत्यु का कारण बनता है।

भावार्थ—ब्रह्म को जहाँ प्राकार (रक्षक, चारदीवारी) बनाया जाता है, वहाँ सभी सुरक्षित रहते हैं, कोई भी मृत्यु का शिकार नहीं होता।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**आस्तारपंक्तिः** ॥

अमम्रिः-अमृतः-अतिजीवः

परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात्सबन्धुभ्यः।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम्॥ २६॥

१. हे पुरुष! गतमन्त्र में वर्णित ब्रह्मज्ञानमय दुर्ग **त्वा**-तुझे **समानेभ्यः**-तेरे समान बल, आयु व विद्यावाले पुरुषों और **सबन्धुभ्यः**-साथ रहनेवाले बन्धुओं की ओर से होनेवाले **अभिचारात्** आक्रमण से **परिपातु**-रक्षित करे। २. तू **अमम्रिः भव**-असमय में मरनेवाला न हो, **अमृतः**-नीरोग

हो, **अतिजीवः**=अतिशयित जीवन-शक्तिवाला हो। **असवः**=प्राण **ते शरीरम्**=तेरे शरीर को **मा हासिषुः**=मत छोड़ जाएँ।

भावार्थ—ब्रह्मरूप प्राकार हमें सब आक्रमणों से बचाये। हम असमय में न मरनेवाले, नीरोग, अतिशयित जीवन-शक्तिवाले बनें। प्राण हमारे शरीरों को न छोड़ जाएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आयुः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

एकशतं मृत्यवः

ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः।
मुञ्चन्तु तस्मात्त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि॥ २७॥

१. **ये**=जो प्रसिद्ध **मृत्यवः**=मरण के कारणभूत ज्वर शिरोव्यथा आदि **एकशतम्**=एक सौ संख्या से संख्यात रोग हैं, **याः**=जो **नाष्ट्राः**=नाशकारिणी **अतितार्याः**=अतितरीतव्य—लङ्घनीय—हिंसिका अविद्याग्रन्थियाँ हैं, **तस्मात्**=इन रोगों वा अविद्याग्रन्थियों से **देवाः**=सब देव—ज्ञानीपुरुष **त्वाम्**=तुझे **मुञ्चन्तु**=छुडाएँ। २. वे ज्ञानीपुरुष तुझे इन रोगों व वासनाओं से छुड़ाएँ जो **अग्नेः वैश्वानरात् अधि**=उस अग्रणी सर्वनरहितकारी प्रभु के प्रतिनिधि हैं (अधि पञ्चम्यर्थानुवादी)। उस प्रभु के ज्ञान-सन्देश को सुनाते हुए ये तुझे सब रोगों व वासनाओं से मुक्त करें।

भावार्थ—प्रभु के प्रतिनिधिभूत ज्ञानीपुरुषों से ज्ञान सन्देश प्राप्त करके हम रोगों व वासनाओं से ऊपर उठें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आयुः**॥ छन्दः—**पुरस्ताद्बृहती**॥

'पूतुद्रु' नाम भेषजम्

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहाऽसि सपत्नहा।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम्॥ २८॥

१. हे ब्रह्मन्! आप **अग्नेः शरीरं असि**-अग्नि का शरीर हैं—अग्नि का आपमें निवास है। प्रत्येक प्रगतिशील जीव प्रभु में निवास करता है। **पारयिष्णु**=आप ही इस भवसागर से हमें पार करनेवाले हैं। **रक्षोहा असि**=सब राक्षसीभावों को विनष्ट करनेवाले हैं, **सपत्नहा**=हमारे रोगरूप व काम-क्रोध आदि शत्रुओं का हनन करनेवाले हैं। २. **अथो**=(अपि च) और आप **अमीवचातनः**=सब रोगों के विनाशक हैं। इस महिमावाले आप वस्तुतः **पूतुद्रुः नाम**=पूतद्रु नामवाले हैं। आप इस संसार वृक्ष को पवित्र करनेवाले हैं (पूत=द्रु), **भेषजम्**=आप सब रोगों के औषध हैं।

भावार्थ—प्रभुस्मरण सब रोगों का औषध है। प्रभु रोगों व वासनाओं को विनष्ट करके हमें पवित्र करते हैं। रोगों व शत्रुओं को विनष्ट करनेवाला 'चातन' ही तीसरे व चौथे सूक्त का ऋषि है।

३. [तृतीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**चातनः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

शिशानः अग्निः

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्॥ १॥

१. **रक्षोहणम्**=राक्षसी भावों को नष्ट करनेवाले, **वाजिनम्**=प्रशस्त बलवाले उस प्रभु को **आजिघर्मि**=अपने हृदयदेश में दीप्त करता हूँ तथा **मित्रम्**=सबको मृत्यु व पाप से बचानेवाले **प्रथिष्ठम्**=अतिशयित विस्तारवाले—सर्वव्यापक उस प्रभु की **शर्म उपयामि**=शरण में जाता हूँ।

२. **सः अग्निः** वह अग्रणी प्रभु **क्रतुभिः समिद्धः**-यज्ञादि कर्मों से हृदयदेश में दीप्त किया हुआ **शिशानः** हमारी बुद्धियों को तीक्ष्ण करनेवाला है। ये बुद्धियाँ ही तो हमारे कर्मों को पवित्र करनेवाली होंगी। **सः**-वे प्रभु **नः** हमें **दिवा**-दिन में तथा **नक्तम्**-रात्रि में **रिषः**-हिंसक तत्त्वों से **पातु**-बचाएँ। प्रभु सदा हमारा रक्षण करनेवाले हों। प्रभु से रक्षित हुए-हुए हम तीव्र बुद्धिवाले और यज्ञादि पवित्र कर्मोंवाले बनें।

भावार्थ—हम प्रभु को हृदयदेश में समिद्ध करें। उत्तम कर्मों में लगे हुए प्रभु के प्रिय बनें। प्रभु से दीप्त बुद्धि पाकर हम दिन-रात अपना रक्षण कर पाएँ।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान+उपासना

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः।
आ जिह्वया मूरदेवान्रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वाऽपि धत्स्वासन्॥ २॥

१. हे **जातवेदः** सर्वज्ञ प्रभो! **समिद्धः**-गतमन्त्र के अनुसार क्रतुओं द्वारा दीप्त हुए हुए **अयोदंष्ट्रः**-तीक्ष्ण दंष्ट्राओंवाले आप **अर्चिषा**-अपनी ज्ञानज्वाला से **यातुधानान्**-पीड़ा का आधान करनेवाली राक्षसी वृत्तियों को **उपस्पृशम्**-समीपता से स्पर्श करते हुए भस्म कर देते हैं। आपके द्वारा सब अशुभ वृत्तियाँ दूर की जाती हैं। २. आप **मूरदेवान्**-(दिव् व्यवहारे) मूढ़तापूर्ण व्यवहार करनेवालों को **जिह्वया**-(Flame) ज्ञानज्वाला के द्वारा **आरभस्व** (to form) उत्तम जीवनवाला बनाइए। **क्रव्यादः**-मांसभक्षण करनेवालों को **वृष्ट्वा** (to bestow)-ज्ञान देकर **आसन् अपिधत्स्व** अपने मुख में धारण कीजिए (आसन्-face)। इसे अपने सामने अपनी उपासना में संलग्न कीजिए।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से ज्ञानज्वाला द्वारा हमारे अशुभ कर्म नष्ट हो जाएँ और उपासना के द्वारा हमारा जीवन पवित्र बन जाए।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'ब्रह्म+क्षत्र' के द्वारा 'काम-क्रोध का विनाश'

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान्॥ ३॥

१. हे **उभयाविन्**-ब्रह्म व क्षत्र—ज्ञान व शक्ति—दोनों से सम्पन्न प्रभो! **उभा** हमारे दोनों शत्रुओं को—काम क्रोध को (तौ ह्यस्य परिपंथिनौ) **दंष्ट्रौ उपधेहि**-दंष्ट्रान्तर्वर्ती कीजिए—इन्हें समाप्त कर दीजिए। ज्ञान 'काम' को शान्त करेगा तो 'शक्ति क्रोध को समाप्त करनेवाली होगी। हे प्रभो! आप **शिशानः** हमारी बुद्धि को तीव्र करते हुए **अवरं परं च** इस काम को और कामोत्पन्न क्रोध को (कामात् क्रोधोऽभिजायते) **हिंस्रः** नष्ट करनेवाले होते हैं। काम को यहाँ 'अवर' कहा गया है, यह मनुष्य की हीनता का कारण होता है। क्रोध को 'पर' कहने का कारण यही है कि यह काम से उत्पन्न होता है—पीछे होने के कारण यह 'पर' है। २. **उत**-और हे **अग्ने** अग्रणी प्रभो! आप **अन्तरिक्षे**-हमारे हृदयान्तरिक्ष में **परियाहि**-सर्वतः गति करनेवाले होओ। हमारा हृदय आपका निवास स्थान बने और वहाँ **यातुधानान्**-हमें पीड़ित करनेवाली वासनाओं को **जम्भैः** अपनी दंष्ट्राओं से **अभिसन्धेहि**-युक्त कीजिए, अर्थात् आप इन वासनाओं के विनाश का कारण बनिए।

भावार्थ—प्रभु 'ब्रह्म और क्षत्र' की चरम सीमा हैं। वे ज्ञान के द्वारा हमारी 'काम' वासना को तथा शक्ति के द्वारा क्रोध को नष्ट करते हैं।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

यातुधान को अयातुधान बनाना

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम्।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम्॥ ४॥

१. हे **अग्ने**=राष्ट्र को उन्नतिपथ पर ले-चलनेवाले राजन्! **यातुधानस्य**=प्रजापीड़क के **त्वचम्**-सम्पर्क को **भिन्धि**-तोड़ दे, इसे अपने साथियों से अलग कर दे। अलग होने पर यह अपने जीवन के मार्ग के विषय में ठीक सोच सकता है। **हिंस्राशनिः**=(अशनि=master) अज्ञान को नष्ट करनेवाला अध्यापक **हरसा**=वासनाओं को विनष्ट करने की शक्ति से **एनं हन्तु**-इस यातुधान को प्राप्त हो (हन् गतौ)। वह ज्ञान देकर इसे अधर्म मार्ग से हटानेवाला हो। २. हे **जातवेदः**=ज्ञानीपुरुष! तू **पर्वाणि**=इसकी वासना-ग्रन्थियों को **प्रशृणीहि**=प्रकर्षेण नष्ट करनेवाला बन। ज्ञान के द्वारा तू इसे वासनामय जगत् से ऊपर उठा। तू उसे इसप्रकार का ज्ञान दे कि वह **क्रविष्णुः**=औरों के मांस की इच्छावाला **क्रव्यात्**=मांसभक्षक पुरुष—औरों के नाश में लगा हुआ पुरुष **एनम्**-इन द्वेषों व दोषों को **वि चिनोतु**-अपने से पृथक् करनेवाला हो। यह औरों के विनाश पर अपने आमोद-भवन को खड़ा न करे।

भावार्थ—राजा यातुधान को उसके साथियों से अलग करे। ज्ञानी पुरुष उसे ज्ञान दें। इस ज्ञान द्वारा वे उसकी वासना-ग्रन्थियों को विनष्ट करें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान द्वारा वासना-विनाश

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम्।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः॥ ५॥

१. हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ **अग्ने**-अग्रणी प्रभो! आप **इदानीम्**-अब **यत्र**-जहाँ भी **तिष्ठन्तम्**-ठहरे हुए—प्रसुप्त अवस्था में पड़े हुए (यातुधान) हिंसक विचार को **उत वा**=अथवा **चरन्तम्**=गति करते हुए, अर्थात् जागरित अवस्था में कार्य करते हुए **पश्यसि**=देखते हैं, **तम्**-उसको **विध्य**=नष्ट कीजिए। हमारे जागरित व प्रसुप्त सभी अशुभ विचार नष्ट हो जाएँ। २. **उत** और **अन्तरिक्षे**-हृदयान्तरिक्ष में **पतन्तम्**-गति करते हुए—विविधरूपों में प्रकट होते हुए **यातुधानम्**=यातुधान को **अस्ता**=सुदूर फेंकनेवाले आप **शिशानः**=हमारी बुद्धियों को तीव्र करते हुए **शर्वा** (विध्य)=नाशक शक्ति के द्वारा बींध डालिए। आपकी कृपा से विविधरूपों में हृदय के अन्दर उठनेवाले अशुभ विचार विनष्ट हो जाएँ।

भावार्थ—प्रभुकृपा से हमारा ज्ञान बढ़े और अशुभ वृत्तियाँ विनष्ट हो जाएँ।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रेरणा व ज्ञान प्राप्त करना

यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान्प्रतीचो बाहून्प्रति भङ्ग्ध्येषाम्॥ ६॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! अथवा राष्ट्र की अग्रगति को सिद्ध करनेवाले राजन्! आप **यज्ञैः**-उत्तम कर्मों से **इषुः**=प्रेरणाओं को **संनममानः**-प्रेरित करते हुए और **अशनिभिः**-(अशनि=master) आचार्यों के द्वारा **वाचा**=ज्ञान की वाणियों से **शल्यान्**-हृदयवेधी भावनाओं को **दिहानः**=बढ़ाते हुए **ताभिः**=उन प्रेरणाओं से तथा ज्ञानवाणियों से **यातुधानान्**=प्रजापीड़कों

को **हृदये विध्य**-हृदय में विद्ध कीजिए। इनके हृदयों में इनके अपने अपवित्र कार्य ही चुभने लगें। ज्ञान की वाणियाँ इनके हृदयों में इसप्रकार की तीव्र वेदना उत्पन्न करें कि इनका हृदय तीव्र प्रायश्चित्त की भावनावाला हो उठे। २. इसप्रकार इन्हें पापों के प्रति तीव्र वेदनावाला करके **एषाम्**-इनकी **प्रतीचः बाहून्**=पापकर्म में प्रवृत्त (Turned away—धर्ममार्ग से दूर गई हुई) बाहुओं को **भंग्धि**-तोड़ दे, इनमें पापकर्म करने की शक्ति ही न रहे।

भावार्थ—राजा उत्तम कर्मों तथा ज्ञान प्रकाश के द्वारा यातुधानों के हृदयों में ऐसी चुभन पैदा करे कि वे पापकर्म से घृणा करनेवाले बनकर, उनके लिए प्रायश्चित्त करके पवित्र हो जाएँ।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

अपरिपक्वता को दूर करनेवाली ज्ञान की वाणियाँ

उतारब्धान्त्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणाँ ऋष्टिभिर्यातुधानान्।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥ ७ ॥

१. हे **जातवेदः**-सर्वज्ञ प्रभो! आप **आरेभाणान्**-आपके स्तवन में प्रवृत्त हमें **स्पृणुहि** (पालय) रक्षित कीजिए, **उत**-और **आरब्धान्** जिन्होंने हमें जकड़ लिया है। (रभ to clasp) उन **यातुधानान्**-पीड़ा का आधान करनेवाले राक्षसीभावों को **ऋष्टिभिः** (ऋष् गतौ, ऋषिर्दर्शनात्) क्रियाशीलता व ज्ञानरूप शस्त्रों के द्वारा (स्पृणुहि) नष्ट कीजिए (स्पृ to kill)। २. हे **अग्ने** अग्रणी प्रभो! **शोशुचानः** ज्ञान से दीप्त होते हुए आप मुझे भी ज्ञानदीप्ति प्राप्त कराके **पूर्वः**=(पृ पालनपूरणयोः) मेरा पालन व पूरण करनेवाले होते हुए **निजहि**-इन राक्षसीभावों को नष्ट कर दीजिए। **आमादः** (आम अद्) कच्चेपन को समाप्त कर देनेवाली **एनीः** उज्ज्वल—शुभ्र **क्ष्विङ्काः**-(क्षु शब्दे) ज्ञान की वाणियाँ **तम्**-उस राक्षसीभाव को **अदन्तु**=खा जाएँ।

भावार्थ—हमारे अशुभभाव दूर होकर हमारे जीवनों में शुद्धभावों का वर्धन हो। ये ज्ञान की वाणियाँ हमारी अपरिपक्वता को दूर कर दें। परिपक्व विचारोंवाले बनकर हम अशुभ वासनाओं में न फँस जाएँ।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान के द्वारा उत्कृष्ट जीवन का निर्माण

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥ ८ ॥

१. हे **अग्ने** परमात्मन्. **यः यातुधानः**-जो औरों को पीड़ा पहुँचानेवाला है, **(यः) इदं कृणोति**-जो इस जगत् को हानि पहुँचाता है—इस लोक के प्राणियों का हिंसन करता हैं, **सः यतमः** वह जो भी है, उसे **इह**-यहाँ **प्रब्रूहि** प्रकर्षेण उपदेश कीजिए। २. हे **यविष्ठ**-अधिक से अधिक बुराइयों को दूर करनेवाले प्रभो! **तम्**-उसे **समिधा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा **आरभस्व**=(to form) श्रेष्ठ बना दीजिए। **एनम्** इसे **नृचक्षसः**-(नॄन् चष्टे) प्रजा का पालन करनेवाले राजा की **चक्षुषे**-आँख के लिए **रन्धय**-(make subject to) वशीभूत कीजिए। राष्ट्र में राजा इन मनुष्यों पर दृष्टि रक्खे और इन्हें प्रजा-विध्वंस के कार्यों से रोककर धीमे धीमे ज्ञान प्रकाश के द्वारा इनके सुधार का प्रयत्न करे।

भावार्थ—प्रभु यातुधानों को प्रेरणा देकर परिवर्तित जीवनवाला बनाते हैं। इन्हें राजा के वशीभूत करके इनका सुधार करते हैं।

ऋषिः—चातनः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

राजकर्त्तव्य

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन्यातुधाना नृचक्षः॥ ९॥

१. हे **अग्ने**=राष्ट्र के अग्रणी राजन्! तू **तीक्ष्णेन चक्षुषा**-बड़ी तीव्र दृष्टि से **यज्ञं रक्ष**-यज्ञ की रक्षा कर। इस राष्ट्र-यज्ञ को यातुधानों के द्वारा किये जानेवाले विध्वंस से बचा। हे **प्रचेतः**-प्रकृष्ट ज्ञानवाले राजन्! **वसुभ्यः**=उत्तम निवासवालों के लिए—जीवन को उत्तमता से बितानेवालों के लिए तू इस राष्ट्र-यज्ञ को **प्राञ्चं प्रणय**=सदा अग्रगतिवाला कर। यह राष्ट्र निरन्तर उन्नतिपथ पर आगे बढ़नेवाला हो और यातुधानों से विपरीत वसुओं के लिए—स्वयं उत्तम जीवन बितानेवाले तथा औरों को उत्तम जीवन बिताने देनेवालों के लिए इस राष्ट्र को तू उन्नत कर। यहाँ वसुओं को उन्नति के सब साधन प्राप्त हों। २. हे **नृचक्षः**-प्रजाओं का ध्यान करनेवाले राजन्! **रक्षांसि हिंस्रम्**=राक्षसीवृत्तियों को समाप्त करने के स्वभाववाले **अभि शोशुचानम्**-बाहर व भीतर दीप्तिवाले—बाहर स्वास्थ्य के तेज से सम्पन्न और भीतर ज्ञानज्योति से दीप्त **त्वा**-तुझे **यातुधानाः**-ये प्रजापीड़क **मा दभन्**=हिंसित करनेवाले न हों। ये तुझे अपने दबाव में न ला सकें।

भावार्थ—राजा का मूल कर्त्तव्य यही है कि वह राष्ट्रयज्ञ के विघ्नकारी यातुधानों को दूर करे। यातुधानों को दूर करके वसुओं के लिए उन्नति के साधन प्राप्त कराए।

ऋषिः—चातनः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

त्रिविध दण्ड

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च॥ १०॥

१. हे राजन्! **नृचक्षाः**-प्रजाओं का पालन करनेवाला तू **विक्षु**=प्रजाओं में **रक्षः**=राक्षसी-वृत्तिवाले को **परिपश्य**=सब ओर से देखनेवाला हो। राष्ट्र में जहाँ भी कोई राक्षसीवृत्तिवाला व्यक्ति हो वह तेरी आँख से ओझल न हो जाए। **तस्य**-उस राक्षस के **त्रीणि**=तीन **अग्रा**-प्रमुख दोषों को **प्रतिशृणीहि**=तू एक-एक करके समाप्त करनेवाला हो। राष्ट्र में सब अपराधों के मूल में 'काम-क्रोध तथा लोभ' ही होते हैं। तू पाप के इन तीनों मूलकारणों को समाप्त करनेवाला बन। ज्ञान देकर तू इन्हें कामादि से ऊपर उठानेवाला हो। २. हे **अग्ने**-राष्ट्र की अग्रगति के साधक राजन्! **तस्य**-उसके **पृष्टिः**=आधारभूत स्थानों व लोगों को तू **हरसा**-अपनी तेजस्विता के द्वारा **शृणीहि**=नष्ट कर डाल। तेरे राष्ट्र में कोई भी व्यक्ति राष्ट्र के इन अपराधियों के सहायक (पृष्ठ) न बनें। ३. हे राजन्! तू **यातुधानस्य**-इस प्रजापीड़क के **मूलम्**-मूल को—पापकर्म की आधारभूत वृत्ति को **त्रेधा**-तीन प्रकार से **वृश्च**-काट डाल। 'वाग्दण्ड, धिग्दण्ड, अर्थ वा वधदण्ड' द्वारा तू इस यातुधान की अशुभवृत्ति को समाप्त कर डाल।

भावार्थ—राजा यातुधानों को ज्ञान देकर 'काम-क्रोध-लोभ' का शिकार होने से बचाए। इन्हें शरण देनेवालों को भी दण्डित करे। 'वाग्दण्ड' आदि द्वारा इन्हें पापकर्म से निवृत्त करने के लिए यत्नशील हो।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अध्यापन व उपदेश द्वारा जीवन-परिवर्तन

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि युङ्ग्धि॥ ११॥

१. हे **अग्ने**-राष्ट्र के अग्रणी राजन्! **यः**-जो **यातुधानः**-प्रजापीड़क व्यक्ति **अनृतेन** अनृत से **ऋतं हन्ति**-ऋत को नष्ट करता है, वह **त्रिः** तीन बार **ते प्रसितिम् एतु**-तेरे बन्धन में प्राप्त हो। प्रथम बार उसे 'वाग्दण्ड' देकर छोड़ दिया जाए। दूसरी बार उसके लिए 'धिग्दण्ड' का प्रयोग हो। तीसरी बार उसे 'अर्थदण्ड और वधदण्ड' के योग्य समझा जाए। २. हे **जातवेदः**-राष्ट्र में ज्ञान का प्रसार करनेवाले राजन्! **तम्** उस यातुधान को **अर्चिषा**=ज्ञान की ज्वाला से **स्फूर्जयन्**-(स्फूर्ज् to shine) दीप्त करने के हेतु से **गृणते समक्षम्**-स्तोता व उपदेष्टा के सामने **एनं नियुंग्धि**-इसे नियुक्त कर। प्रभुभक्त उपदेष्टा इसे उचित ज्ञान व प्रेरणा देकर इसके जीवन को ऋतमय बनाने के लिए यत्नशील हो।

भावार्थ—क़ैदियों के लिए अध्यापन व उपदेश की व्यवस्था करके राजा को उनके जीवन को परिवर्तित करने की व्यवस्था करनी चाहिए।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

पति-पत्नी व मित्रों को परस्पर कटुता के लिए 'वाग्दण्ड'

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान्॥ १२॥

१. हे **अग्ने** राजन्! **यत्**=जो **अद्य**-आज **मिथुना**=पति पत्नी परस्पर **शपातः**-एक दूसरे को आक्रुष्ट करनेवाले होते हैं—परस्पर अपशब्द बोल बैठते हैं और क्रोध में आकर राजाधिकरण (न्यायालय) में जाते हैं, **यत्**-जो **रेभाः**-बहुत बोलने के स्वभाववाले मित्र **वाचः तृष्टम्**-वाणी की कटुता को (harsh, pungent) **जनयन्त**-उत्पन्न करते हैं, अर्थात् परस्पर कड़वे शब्द बोलते हुए न्यायालय में आ पहुँचते हैं, इन **यातुधानान्**-एक-दूसरे को पीड़ित करनेवालों को **तया हृदये विध्य**-उस वाणी से हृदय में बींध (विद्ध कर) **या**=जो **मन्योः** कुछ भी विचारशील पुरुष के **मनसः**=मन की **शरव्या**-शरसंहति (बाणसमूह) **जायते**-बन जाती है, अर्थात् यह उपदेश-वाणी उनके हृदय में प्रभाव पैदा करती है और वे आत्मग्लानि अनुभव करते हुए अपने कर्म के लिए पश्चात्तापयुक्त होते हैं।

भावार्थ—पति पत्नी परस्पर कटु शब्द बोल बैठें या मित्र तेजी में आकर अशुभ शब्द बोल जाएँ तो राजा उन्हें 'वाग्दण्ड' द्वारा भविष्य में वैसा न करने के लिए प्रेरित करे।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'तप, तेज व ज्योति' से पाप दूर करना

परा शृणीहि तपसा यातुधानान्पराऽग्ने रक्षो हरसा शृणीहि।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि॥ १३॥

१. **तपसा**-तप के द्वारा **यातुधानान्**-पीड़ा देनेवालों को **पराशृणीहि** दूर विनष्ट कर। जिस समय जीवन में तप की कमी आ जाती है तब भोगवृत्ति बढ़ जाती है, उसी समय मनुष्य औरों को पीड़ित करनेवाला बनता है। यदि प्रजा में तपस्या की भावना बनी रहे तो उनके जीवनों में 'यातुधानत्व' आता ही नहीं। हे **अग्ने**-राजन्! आप **हरसा**=(ज्वलितेन तेजसा—द०) तेजस्विता

के द्वारा **रक्षः**=राक्षसीवृत्तिवालों को **पराशृणीहि**=सुदूर विनष्ट करनेवाले होओ। तेजस्विता अशुभ वृत्तियों को विनष्ट करनेवाली है। २. **अर्चिषा**-ज्ञान की ज्वाला से **मूरदेवान्**-मूर्खतापूर्ण व्यवहार करनेवालों को **पराशृणीहि**=विनष्ट कीजिए। ज्ञान-प्रसार के द्वारा मूर्खता के नष्ट होने पर सब व्यवहार विवेक व सभ्यता के साथ होने लगते हैं। **असुतृपः**=केवल अपने प्राणों को तृप्त करने में लगे हुए **शोशुचतः**-(to burn, consume) औरों के शोक का कारण बनते हुए इन लोगों को तू **पराशृणीहि**=सुदूर विनष्ट कर।

भावार्थ—जीवन में तपस्या के द्वारा यातुधानत्व का विनाश हो, तेजस्विता से राक्षसीवृत्ति का विलोप हो और ज्ञान प्रसार के द्वारा 'मूर्खतापूर्ण व्यवहार तथा केवल अपने को तृप्त करने की वृत्ति' का—स्वार्थ का विलोप हो।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

हम 'वाचास्तेन' न बनें

पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन्विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः॥ १४॥

१. **अद्य**-आज **देवाः**=ज्ञान का प्रसार करनेवाले विद्वान् **वृजिनम्**=पाप को **पराशृणन्तु**=दूर शीर्ण कर दें। ज्ञान-प्रसार से पापवृत्ति दूर हो। राष्ट्र में राजा ज्ञान-प्रसार का पूर्ण ध्यान करे। **तृष्टाः**=उत्पन्न किये हुए कर्कश **शपथाः**=अभिशाप **एनम्**=इस शाप देनेवाले को **प्रत्यक् यन्तु**-लौटकर आभिमुख्येन प्राप्त हों। समझदार मनुष्य गालियों का उत्तर गालियों में नहीं देता और इसप्रकार अपशब्द बोलनेवाले के पास ही उसके अपशब्द लौट जाते हैं। २. **वाचास्तेनम्**=वाणी की चोरी करनेवाले, अर्थात् अनृत व कटु शब्द बोलनेवाले इस व्यक्ति को इसके वचन ही **शरवः मर्मन् ऋच्छन्तु**-शरतुल्य होकर मर्मस्थलों में प्राप्त हों। इस वाचास्तेन को जहाँ अपने शब्द ही पीड़ाकर हों, वहाँ यह **यातुधानाः**=औरों को पीड़ित करनेवाला व्यक्ति **विश्वस्य**-उस सर्वव्यापक प्रभु के (विशति सर्वत्र) **प्रसितिं एतु**=बन्धन को प्राप्त हो। यह वाचास्तेन पशु-पक्षियों की योनियो में भटकता है। अपने जीवनकाल में भी अपने वचनों से स्वयं कष्ट प्राप्त करता है।

भावार्थ—ज्ञान से पाप दूर होता है। ज्ञानी अपशब्दों को न लेकर बोलनेवाले को ही लौटा देता है।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

मनुष्यों व पशुओं पर क्रूरता को रोकना

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च॥ १५॥

१. हे **अग्ने**=राजन्! **तेषाम्**=उनके **शीर्षाणि**=शिरों को **हरसा**=अपने ज्वलित तेज से **वृश्च**-तू छिन्न करनेवाला हो, अर्थात् इनको उचित दण्ड देकर इनके अपवित्र कार्यों से इन्हें रोक। सबसे प्रथम उसे रोक **यः**=जो अपने को **पौरुषेयेण क्रविषा**=पुरुष-सम्बन्धी मांस से **समंक्ते**=संगत करता है। जो नर-मांस का सेवन करता है अथवा औरों को नष्ट करके अपने भोगों को बढ़ाता है, २. उसे तू रोक **यः**-जो **अश्व्येन**=घोड़े के मांस से अपने को संगत करता है—जो घोड़े को दिन-रात जोते रखकर अपनी भोगवृत्ति को बढ़ाने का यत्न करता है। **यः यातुधानः**=जो औरों को पीड़ित करनेवाला **पशुना**=अन्य पशुओं को पीड़ित करके अपने धन को बढ़ाना चाहता है। हे राजन्! तू उसे रोक **यः**-जो **अघ्न्यायाः**-अहन्तव्य गौ के **क्षीरं भरति**-दूध को दूहने की बजाय पीड़ित करके हरना चाहता है। 'बछड़े को भी उचित मात्रा में दूध न देकर सारे दूध को स्वयं

ले लेने की कामना करता है,' उसे भी राजा दण्ड देकर इस अपराध से रोके।

भावार्थ—राजनियम ऐसा हो कि कोई भी मनुष्य अन्य मनुष्यों पर, घोड़ों व अन्य पशुओं पर, विशेषकर गौओं पर क्रूरता न कर सके।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

विष, न कि दूध

विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः।
परैणान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम्॥ १६॥

१. **यातुधानाः**-गौओं को पीड़ित करके गौओं का दूध निकालनेवाले लोग **गवाम्**=गौओं के **विषम्**-विष को **भरन्ताम्** अपने में धारण करें। वस्तुतः जब गौओं को पीड़ित किया जाता है तब उनके दूध आदि में विष की उत्पत्ति हो जाती है। इस विषैले दूध को पीनेवाले लोग दूध क्या पीते हैं, विष ही पीते हैं। **अदितये** शरीर के अखण्डन व स्वास्थ्य के लिए दूध का अतिमात्र प्रयोग करनेवाले ये **दुरेवाः**-(दूर एव) ग़लत मार्ग पर चलते हुए यातुधान **आवृश्चन्ताम्** अपने स्वास्थ्य को छिन्न कर लें। इन दुराचारी यातुधानों का स्वास्थ्य उस विषैले दूध को पीने से नष्ट हो जाए। २. **सविता देवः**-वह प्रेरक देव **एनान्**=इन लोगों को **पराददातु**=स्वरभंग आदि अनुभवों को प्राप्त कराके इन अपकर्मों से पृथक् करे। ये लोग दूध के साथ **ओषधीनां भागम्**-ओषधियों के सेवनीय अंश को **पराजयन्ताम्**-(लभन्ताम्) प्राप्त करनेवाले हों। **'पयः पशूनां रसमोषधीनाम्'** इस मन्त्र की प्रेरणा के अनुसार ये पशुओं के अविषाक्त दूध तथा ओषधियों के रसों का सेवन करनेवाले बनें।

भावार्थ—गौ को पीड़ित करके प्राप्त किया गया दूध विषमय हो जाता है, उसका प्रयोग ठीक नहीं।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

गोपीड़क को दण्ड

संवत्सरीणं पय उस्त्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात्तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि॥ १७॥

१. हे **नृचक्षः**-मनुष्यों का ध्यान करनेवाले प्रजापालक राजन्! **यातुधानः** गौओं को पीड़ित करके उनके दूध को छीननेवाला यातुधान **उस्त्रियायाः**=गौ का जो **सवंत्सरीणं पयः**-वर्षभर में मिलनेवाला दूध है **तस्य मा अशीत्** उसका भोजन न करें। उस यातुधान को वर्षभर गौ का दूध पीने को न मिले। वह गौ की सेवा करे, परन्तु उसे गौ के दूध से वंचित रक्खा जाए। क्रूरता से दुग्धहरण का यही समुचित दण्ड है। २. **यतमः** जो भी यातुधान, **अग्ने** हे राजन्! **पीयूषम्**-अभिनव पय को—सर्वारम्भ में स्तनों से बाहर आनेवाले दूध को जोकि वस्तुतः बछड़े का भाग है, **तितृप्सात्** अपनी तृप्ति का साधन बनाने की इच्छा करता है, **तम्**-उस **प्रत्यञ्चम्**=प्रतिकूल मार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति के **मर्मणि**=मर्मस्थलों को तू **अर्चिषा**-ज्ञानज्वाला से **विध्य**=बींध दे। तू उसे ऐसे शब्दों में समझाने का प्रयत्न कर कि 'बच्चे भूखे बैठे हों और माता-पिता आनन्द से खा रहे हों' तो क्या यह दृश्य माता पिता की मानवता का सूचक है? इसीप्रकार गौ का बछड़ा तरसता रह जाए और तुम गौ के ऊधस् से एक-एक बूँद दूध को निकालने का प्रयत्न करो तो यह कहाँ तक ठीक है? इसप्रकार उसे ज्ञान दिया जाए कि यह उसके हृदय में घर कर जाए—उसे अपना अपराध मर्माहत करने लगे।

भावार्थ—पीड़ा देकर गोदुग्ध हरण करनेवाले को वर्षभर दूध न मिलने का दण्ड दिया जाए।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

ज्ञान-प्रसार द्वारा यातुधान का अन्त

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः॥ १८॥

१. हे **अग्ने**-राष्ट्र को आगे ले-जानेवाले राजन्! तू **सनात्** चिरकाल से **यातुधानान्** प्रजा व पशुओं के पीड़कों को **मृणसि**-कुचल देता है। **त्वा**=तुझे **पृतनासु**=संग्रामों में **रक्षांसि**=ये राक्षसीवृत्ति के लोग **न**-नहीं **जिग्युः**=जीत पाते। तू **क्रव्यादः**=इन मांसभक्षियों को **सहमूरान्**=जड़ समेत (सह+मूर-मूल) **अनुदह**-भस्म कर दे। इन्हें जड़ समेत भस्म करने का भाव यह है कि 'ये न तो मांस खाएँ और न ही इनकी मांस खाने की रुचि रह जाए। विषय तो जाएँ विषरस भी जाए'। **ते**-आपके **दैव्यायाः हेत्याः**=दिव्य वज्र से—प्रकाशमय वज्र से **मा मुक्षत**-कोई भी यातुधान मुक्त न रह जाए। ज्ञान-प्रकाश के फैलने से उनका यातुधानत्व व क्रव्यादपना ही समाप्त हो जाए।

भावार्थ—राजा राष्ट्र में ज्ञान-प्रसार के द्वारा यातुधानत्व को समाप्त करे।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अघशंस का दहन

त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात्।
प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु॥ १९॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमें '**अधरात्**-नीचे से **उदक्तः**=ऊपर से', अर्थात् दक्षिण व उत्तर से, **त्वम्**=आप '**पश्चात्**=पीछे से **उत**=और **पुरस्तात्**-सामने से', अर्थात् पश्चिम से और पूर्व से **रक्ष**-रक्षित कीजिए। २. **शोशुचतः**-सर्वत्र पवित्रता व दीप्ति का संचार करनेवाले **ते**=आपके **त्ये**=वे **अजरासः**-कभी जीर्ण न होनेवाले **तपिष्ठः**-अत्यन्त सन्तापक दण्ड **अघशंसम्**=पाप का शंसन करनेवाले को **प्रतिदहन्तु**=भस्म कर दें। आपकी फैलायी हुई ज्ञान-रश्मियों से इनकी अघशंसन की वृत्ति समाप्त हो जाए। ये ठीक मार्ग को देखकर अशुभ मार्ग से विमुख हो जाएँ। ३. राजा को भी यही चाहिए कि राष्ट्र में सत्यज्ञान के प्रसार की ऐसी व्यवस्था करे कि लोग अशुभ बातों की प्रशंसा न करते रहें।

भावार्थ—प्रभु हमें सब ओर से रक्षित करें। प्रभु का प्रकाश व प्रभु से दिये जानेवाले दण्ड अशुभ के शंसन की वृत्ति को समाप्त करनेवाले हों।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

रक्षण व पूर्ण जीवन

पश्चात्पुरस्तादधरादुतोत्तरात्कविः काव्येन परि पाह्यग्ने।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः॥ २०॥

१. हे **राजन्**=ज्ञानदीप्त प्रभो! अथवा ब्रह्माण्ड को नियमित करनेवाले प्रभो! आप **कविः** क्रान्तदर्शी—तत्त्वज्ञानी हैं, आप **काव्येन** इस वेदरूप अजरामर काव्य के द्वारा (पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति) **पश्चात् पुरस्तात्**=पीछे व आगे से—पश्चिम व पूर्व से **अधरात् उत उत्तरात्**=नीचे व ऊपर से—दक्षिण व उत्तर से हमें **परिपाहि**=रक्षित कीजिए। आपके इस काव्य की प्रेरणा के अनुसार चलते हुए हम सदा सुरक्षित जीवन बिता पाएँ। २. हे **अग्ने**=हमें आगे ले-चलनेवाले प्रभो! आप **सखा**=हमारे मित्र हो, **सखायम्**-मुझ सखा को

आप (परिपाहि) रक्षित कीजिए। **अजरः**=कभी जीर्ण न होनेवाले आप हमें **जरिम्णे**-पूर्ण जरावस्थावाले जीवन को प्राप्त कराइए। **त्वं अमर्त्यः**=आप अमर्त्य हैं, **नः मर्तान्**-हम मरणधर्मा अपने मित्रों को पूर्ण जीवनरूप अमरता प्राप्त करानेवाले हैं। आपके मित्र बनकर हम पूरे सौ वर्ष तक जीनेवाले बनें।

भावार्थ—प्रभु हमें वेदरूपी काव्य के द्वारा पाप से बचाकर पूर्ण जीवन प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

'शफारुज्, यातुधान व रेभ' पर कड़ी दृष्टि रखना

तद॑ग्ने॒ चक्षुः॒ प्रति॑ धेहि रे॒भे श॑फा॒रुजो॒ येन॒ पश्य॑सि यातु॒धाना॑न्।
अ॒थ॒र्व॒वज्ज्योति॑षा॒ दैव्ये॑न स॒त्यं धूर्व॑न्तम॒चितं॒ न्यो᳖॑ष॥ २१॥

१. हे **अग्ने**-राष्ट्र के अग्रणी राजन्! तू **येन**-जिस दृष्टि से **शफारुजः**=(शफाः-नखाः सा०) नखों से औरों का विदारण करनेवाले **यातुधानान्** प्रजाओं को पीड़ित करनेवाले राक्षसों को **पश्यसि** देखता हैं, **तत् चक्षुः** उस आँख को **रेभे**-व्यर्थ कोलाहल करनेवाले—पागल के समान बकनेवाले पुरुष पर भी **प्रतिधेहि**-स्थापित कर। तू राष्ट्र में 'शफारुजों, यातुधानों व रेभों' पर दृष्टि रख। ये धार्मिक प्रजा को पीड़ित करनेवाले न बन पाएँ। इनपर तेरा नियन्त्रण हो। २. **अथर्ववत्** (न थर्व-move) कर्त्तव्य-पथ से विचलित न होनेवाले प्रजापति (राजा) के समान **दैव्येन ज्योतिषा**-प्रभु-प्रदत्त वेदज्ञान की ज्योति के द्वारा **सत्यं धूर्वन्तम्**-सत्य को हिंसित करनेवाले **अचितम्**-(अ चित्) इस नासमझ, कर्त्तव्यविमुख व्यक्ति को **न्योष**-तू नितरां दग्ध करनेवाला हो। ज्ञानज्योति प्राप्त करके सत्य का हिंसन न करता हुआ यह एक समझदार नागरिक बन जाए।

भावार्थ—राजा राष्ट्र में उन लोगों पर कड़ी दृष्टि रक्खे जो नखों से औरों का विदारण करते हैं, नाना प्रकार से प्रजा को पीड़ित करते हैं तथा व्यर्थ का कोलाहल मचाये रहते हैं। राजा को चाहिए कि अपने कर्त्तव्य में ढीला न होता हुआ, वेदज्ञान के द्वारा इन्हें समझदार बनाने का प्रयत्न करे, जिससे ये सत्य का हिंसन करने से निवृत्त हों।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रभु का धारण

परि॑ त्वाग्ने॒ पुरं॑ व॒यं विप्रं॑ सहस्य धीमहि।
धृ॒षद्व॑र्णं दि॒वेदि॑वे ह॒न्तारं॑ भङ्गु॒राव॑तः॥ २२॥

१. हे **अग्ने**-परमात्मन्! **सहस्य**=शत्रुओं का मर्षण करनेवालों में उत्तम प्रभो! **वयम्** हम **त्वा**-आपको **परिधीमहि**-अपने में धारण करते हैं, जो आप **पुरम्**-(पृ पालनपूरणयोः) हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं आपकी कृपा से ही हम रोगाक्रान्त शरीरोंवाले नहीं होते और आपकी कृपा से ही हमारे मन हीन भावनाओं से रहित रहते हैं। आप **विप्रम्**=ज्ञान देकर हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाले हैं। २. उन आपको हम धारण करते हैं, जिनके **धृषद् वर्णम्**=गुणों का वर्णन व नामोच्चारण ही हमारे शत्रुओं का धर्षण करनेवाला होता है। उन आपको हम **दिवेदिवे** प्रतिदिन हृदय में धारण करने का प्रयत्न करते हैं। आप **भंगुरावतः** हमारा भंग करनेवाली राक्षसीवृत्तियों का **हन्तारम्**-नाश करनेवाले हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्मरण करें, प्रभु को हृदय में धारण करें। प्रभु हमारी राक्षसीवृत्तियों का विनाश करके हमारा पालन करते हैं।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

व्यापक ज्ञान व सूर्यवत् गति

विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः ॥ २३ ॥

१. हे **अग्ने** प्रकाशमय प्रभो! आप **विषेण**-(विष् व्याप्तौ) व्यापक ज्ञान के द्वारा **भंगुरावतः**-हमारी शक्तियों का भंग करनेवाली **रक्षसः**=राक्षसीवृत्तियों को **प्रति जहि स्म**=निश्चय से एक-एक करके नष्ट कर दीजिए, ज्ञानाग्नि में सब वासनाएँ भस्म हो ही जाती हैं। २. **तिग्मेन शोचिषा** तीव्र ज्ञान की ज्योति से तथा **तपुः अग्रभिः**-(तपु-The sun) सूर्य है आगे जिसके ऐसी **ऋष्टिभिः** (ऋष् गतौ) गतियों से हमारी राक्षसीवृत्तियों को समाप्त कीजिए। सूर्य को सम्मुख करके, अर्थात् सूर्य को आदर्श मानकर की जानेवाली गतियाँ 'तपुरग्रा ऋष्टियाँ' हैं। 'सूर्याचन्द्रमसाविव' सूर्य और चन्द्रमा की भाँति नियमित गति से अशुभ वृत्तियाँ दूर हो जाती हैं।

भावार्थ—व्यापक व दीप्त ज्ञान से तथा सूर्य की भाँति नियमित गति से हम अशुभ वृत्तियों को नष्ट करनेवाले बनें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शृंगद्वयी

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे ॥ २४ ॥

१. **अग्निः**-वह अग्रेणी प्रभु **बृहता ज्योतिषा**-हमारी वृद्धि की कारणभूत महती ज्ञानज्योति से **विभाति**-विशिष्टरूप से दीप्त हो रहा है। वह प्रभु **महित्वा**=अपनी महिमा से **विश्वानि**-सब लोक लोकान्तरों को **आविः कृणुते**=प्रकट करता है अथवा तेज के द्वारा सबके प्रति अपने को प्रकट करता है। २. वे हृदयस्थ प्रभु **अदेवीः**-आसुरी **दुरेवाः**-दुर्गमन-(दुराचार)-रूप **मायाः**-छल कपट को **प्रसहते**-अभिभूत करते हैं—प्रभु छल कपट की वृत्तियों को विनष्ट करते हैं। वे प्रभु **रक्षोभ्यः विनिक्ष्वे**-राक्षसी वृत्तियों के विनाश के लिए **शृङ्गे शिशीते**=उपासक के शृंगों को तीव्र करते हैं। (शृंगे शृणातेः—नि०) 'ज्ञान और कर्म' ही साधक के शृंग हैं। ये उसके शत्रुभूत काम-क्रोध का विनाश करनेवाले होते हैं। उपासक के 'ब्रह्म व क्षत्र' का विकास करके प्रभु काम-क्रोध को दूर भगा देते हैं।

भावार्थ—प्रभु का प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है। प्रभु अपनी महिमा से सब लोकों को प्रकाशित करते हैं। वे ही हमारी आसुरी वृत्तियों को विनष्ट करते हैं और हमारे राक्षसीभावों के विनाश के लिए हमारे 'ब्रह्म+क्षत्र' को विकसित करते हैं।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**बृहतीगर्भाजगती** ॥

दुष्ट हृदयता आदि का निराकरण

ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते।
ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व ॥ २५ ॥

१. हे **जातवेदः**-सर्वज्ञ प्रभो! **ये**=जो **ते**-आपके **अजरे**-कभी जीर्ण न होनेवाले **तिग्महेती**=तीक्ष्णता से हनन के साधनभूत **ब्रह्मसंशिते**=ज्ञान से तीव्र किये गये **शृंगे**-शत्रुओं को शीर्ण करने के साधनरूप 'ब्रह्म व क्षत्र' रूप शृंग हैं, **ताभ्याम्** उनके द्वारा हे **जातवेदः**-सर्वज्ञ प्रभो! इस **दुर्हार्दम्**-दुष्ट हृदयवाले पुरुष को **अर्चिषा विनिक्ष्व**=तीव्र ज्वाला से—ज्ञानशक्ति की ज्वाला से

विनष्ट कर दीजिए, जोकि **अभिदासन्तम्**-सर्वतः उपक्षय करनेवाला है, **किमीदिनम्** दूसरे के जान व माल को तुच्छ समझनेवाला है (किम् इदानीम् इति वदन्तम्) तथा **प्रत्यञ्चम्** (प्रति अञ्च्) हमारे सम्मुख आक्रमण के लिए आनेवाला है। प्रभु ज्ञान व शक्ति देकर 'दुष्टहृदयता' आदि को विनष्ट कर देते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें ज्ञान व शक्ति प्राप्त कराके शुभ हृदयवाला—औरों का उपक्षय न करनेवाला—औरों के जान व माल को तुच्छ न समझनेवाला व औरों पर आक्रमण न करनेवाला बनाएँ

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता **अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

शुचिः पावकः

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः। शुचिः पावक ईड्यः ॥ २६ ॥

१. **अग्निः** वे अग्रणी प्रभु **रक्षांसि सेधति**-हमारी राक्षसीवृत्तियों को दूर करते हैं। **शुक्रशोचिः**-वे प्रभु दीप्त प्रकाशवाले हैं, **अमर्त्यः**-अविनाशी हैं, **शुचिः** वे दीप्त हैं, **पावकः** (पावयिता) हमें पवित्र करनेवाले हैं, **ईड्यः**-स्तुति के योग्य हैं।

भावार्थ—प्रभुस्मरण से राक्षसीवृत्तियाँ दूर भाग जाती हैं।

४. [चतुर्थं सूक्तम्]

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

इन्द्र और सोम

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्य र्पयतं वृषणा तमोवृधः।
परा शृणीतमचितो न्यो षतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः ॥ १ ॥

१. **इन्द्रासोमा** हे इन्द्र और सोम—जितेन्द्रियता व सौम्यता के भाव! अथवा सोमशक्ति का रक्षण! आप **रक्षः तपतम्** राक्षसीभावों को सन्तप्त कर डालो और उन्हें **उब्जतम्**-हिंसित कर दो। जितेन्द्रियता से अशुभ वृत्तियाँ दूर होती हैं और सोमरक्षण के द्वारा रोगों के कारणभूत रोगकृमियों का (**रक्षः**=अपने रमण के लिए औरों का क्षय करनेवाले रोगकृमि) संहार होता है। हे **वृषणा**-हममें शक्ति का सेचन करनेवाले 'इन्द्र और सोम'! **तमोवृधः**=तमोगुण से वृद्धि को प्राप्त होनेवाले दुष्टभावों को **न्यर्पयतम्**-आप नीचे भेजो, अर्थात् पादाक्रान्त करके समाप्त कर दो। २. **अचितः** अज्ञानों को **पराशृणीतम्**-सुदूर विनष्ट कर दो, **निओषतम्**-इन्हें निश्चय से जला दो, **हतम्** मार डालो, **नुदेथाम्**=इन्हें परे धकेल दो। **अत्रिणः**=हमें खा जानेवाली 'काम क्रोध लोभ' की वृत्तियों को **निशिशीतम्**=नितरां क्षीण कर दो।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनें, सोम का अपने में रक्षण करें। इससे हमारे 'काम क्रोध लोभ' रूप शत्रु तो विनष्ट होंगे ही हमारे शरीर भी नीरोग बनेंगे। ये इन्द्र और सोम हमें खा जानेवाले हमारे शत्रुओं को क्षीण कर दें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'ब्रह्मद्विट्, क्रव्याद, घोरचक्षाः, किमीदी' न बनना

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्य१घं तपुर्ययस्तु चरुरग्निमाँइव।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने॥ २॥

१. **इन्द्रासोमा**-जितेन्द्रियता व सौम्यता के दिव्यभावो! **अघशंसम्**=पाप का शसंन करनेवाले **अघम्** पापी को **सम्**-आप दोनों मिलकर **अभि** (भवतम्)-अभिभूत करो। **तपुः** यह सन्तापक

राक्षसीभाव **अग्निमान् चरुः इव**-अग्निवाले हविर्द्रव्य की भाँति **ययस्तु**-आयास को प्राप्त हो—भस्मीभूत हो जाए। जैसे अग्नि में डाला हुआ चरु भस्म हो जाता है, इसी प्रकार ये सन्तापकभाव जितेन्द्रियता व सौम्यता में भस्म हो जाएँ। २. हे इन्द्रासोमा! आप **ब्रह्मद्विषे**=ज्ञान से अप्रीतिवाले, **क्रव्यादे**-मांसभक्षक, **घोरचक्षसे**-क्रूरदृष्टि, **किमीदिने**=(किम् इदानीं इति पृच्छते) पिशुनता के भाव के लिए **अनवायम्**=(अव्यवधानं यथा भवति तथा—सा०) निरन्तर **द्वेषः**=अप्रीति को **धत्तम्**-धारण करो। जितेन्द्रियता व सौम्यता हमें 'ब्रह्मद्विट्, क्रव्याद, घोरचक्षसा व किमीदी' बनने से बचाएँ।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व सौम्यता की अग्नि में सब सन्तापकभाव भस्म हो जाएँ। हम 'ज्ञान की रुचिवाले, वानस्पतिक भोजन करनेवाले, सौम्यदृष्टि व अनिन्दक' बनें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

दुष्ट-दमन

इन्द्रा॑सोमा दु॒ष्कृतो॑ व॒व्रे अ॒न्तर॑नारम्भ॒णे तम॑सि॒ प्र वि॑ध्यतम्।
यतो॒ नैषां॒ पुन॒रेक॑श्च॒नोदय॒त्तद्वा॑मस्तु॒ सह॑से मन्यु॒मच्छव॑ः ॥ ३ ॥

१. हे **इन्द्रासोमा**=जितेन्द्रियता व सौम्यता के भावों से युक्त शासक पुरुषो! आप **दुष्कृतः**-पापकारियों को **वव्रे**=वारक—प्रकाश को दूर करनेवाले **अनारम्भणे**=आलम्बनरहित **तमसि**=अन्धकार में (कारागार में) **अन्तः प्रविध्यतम्**=अन्दर करके दण्डित करो। २. इन्हें इसप्रकार दण्डित करो कि **यतः**=जिससे **एषां एकः चन**-इनका कोई एक भी **पुनः न उदयत्**=फिर उद्‌गत न हो। इनमें से कोई भी हमें प्राप्त होकर पीड़ित करनेवाला न हो। **वाम्**=आपका **तत्**=वह **मन्युमत्**=ज्ञान से युक्त **शवः**-बल **सहसे**=सब शत्रुओं के पराभव करने के लिए **अस्तु**-समर्थ हो।

भावार्थ—राजा जितेन्द्रिय व सोमशक्ति का रक्षण करनेवाला हो। ज्ञानयुक्त बलवाला होता हुआ वह ऐसी समझदारी से दण्ड का प्रणयन करे कि राष्ट्र में दुष्टों का अभाव हो जाए।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

दिवः पृथिव्यः पर्वतेभ्यः

इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वो व॒धं सं पृ॑थि॒व्या अ॒घशं॑साय॒ तर्ह॑णम्।
उत्त॑क्षतं स्व॒र्य॑१ं पर्व॑तेभ्यो॒ येन॒ रक्षो॑ वावृधा॒नं नि॒जूर्व॑थः ॥ ४ ॥

१. हे **इन्द्रासोमा**=जितेन्द्रियता व सौम्यता के भावो! (**इन्द्र**=राजा, **सोमः** न्यायाधीश) जितेन्द्रिय राजन् व सौम्य न्यायाधीश! आप दोनों **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक से—ज्ञान से **वधम्**-पापी के विनाशक आयुध को **वर्तयतम्**=प्रवृत्त करो। इसप्रकार ज्ञानपूर्वक दण्ड दो कि पापी की पापवृत्ति नष्ट हो जाए। **पृथिव्याः**-पृथिवी से ऐसे आयुध को **सम्** (वर्तयतम्)-उत्पन्न करो जोकि **अघशंसाय**-पाप का शंसन करनेवाले के लिए **तर्हणम्**-विनाशक हो। पार्थिव अस्त्रों से—तलवार आदि से शत्रु का विनाश किया जाए। २. **पर्वतेभ्यः**-पर्ववान् मेघों से **स्वर्यम्**-शब्दपूर्वक सन्तप्त करनेवाली विद्युत्-शक्ति से उत्पन्न शस्त्र को **उत्तक्षतम्**-बनाओ, **येन**=जिससे कि **वावृधानम्**=दुष्टता में बहुत बढ़ते हुए **रक्षः**=राक्षसीवृत्ति के पुरुष को **निजूर्वथः**=आप हिंसित कर दें।

भावार्थ—पापी को ज्ञान के अस्त्र से विनष्ट किया जाए—समझाकर उसके पाप को दूर किया जाए। ऐसा न होने पर पार्थिव अस्त्रों से दण्डित कर उसे पाप-निवृत्ति के लिए प्रेरित किया जाए। विवशता में विद्युत्-शस्त्र से (electric chair पर बिठाकर) उसे समाप्त कर दिया जाए।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

दुष्टों का देश से निर्वासन

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम्॥ ५॥

१. **इन्द्रासोमा** हे जितेन्द्रिय राजन् व सौम्य न्यायाधीश! **युवम्**-आप दोनों **दिवः** अन्तरिक्ष से **परि**-चारों और **वर्तयतम्**-आयुधों को प्रेरित करो। **अग्नितप्तेभिः**-अग्नि से तपाये हुए **तपुर्वधेभिः**-तापक प्रहरणों से तथा **अजरेभिः**-न जीर्ण होनेवाले, अर्थात् दृढ़ **अश्महन्मभिः** अश्मसारभूत लोह से बने हुए हनन साधन आयुधों से **अत्त्रिणः**-औरों को खा जानेवाले राक्षसों के **पर्शाने**-पार्श्वस्थानों में **निविध्यतम्**-प्रहार करो २. इसप्रकार इन प्रजापीड़क राक्षसों को विध्य करो कि वे **निस्वरम्**-बिना शब्द के **यन्तु**-यहाँ से दूर चले जाएँ। ये प्रजा में अपना रोना रोते हुए ग़लत प्रचार न कर पाएँ।

भावार्थ—राष्ट्र की ठीक व्यवस्था के लिए दुष्टों को उचित दण्ड दिया जाए और उन्हें राष्ट्र से निर्वासित कर दिया जाए।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'मति' रूप 'कक्ष्या'

इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीइव जिन्वतम्॥ ६॥

१. हे **इन्द्रासोमा**-जितेन्द्रिय व सौम्य (विनीत) पुरुषो! **इयम् मतिः** यह मननीय स्तुति, मननपूर्वक किया गया प्रभुस्तवन **वाम्**-आपके **विश्वतः**-चारों ओर **परिभूतु**=हो। यह आपको इसप्रकार घेरे रहे **इव**-जैसेकि **कक्ष्या**-कमरबन्द **वाजिना अश्वा**-शक्तिशाली घोड़ों को चारों ओर से घेरनेवाला होता है। यह कक्ष्या घोड़ों को सदा सन्नद्ध रखती है, इसी प्रकार यह स्तुति इन्द्र और सोम को सन्नद्ध रक्खे। २. **याम्**-जिस **होत्राम्**-वाणी को **मेधया**-बुद्धि के साथ **वां परिहिनोषि**=आपके लिए प्रेरित करता हूँ, **उभा इमा ब्रह्माणि**-इन ज्ञान की वाणियों को **नृपती इव जिन्वतम्** (ना चासौ पतिश्च) अग्रगतिवाले व अपने स्वामियों की भाँति अपने अन्दर प्रेरित करो। 'ना' बनो—अग्रगतिवाले बनो, 'पति' अपने स्वामी बनो और ज्ञान वाणियों को प्राप्त करो।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन हमें इसप्रकार घेरे रहे जैसेकि कमरबन्द घोड़े को घेरे रहता है। हम अग्रगतिवाले व अपने स्वामी बनकर ज्ञान की वाणियों को अपने अन्दर प्रेरित करें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

शत्रु-संहार व प्रभु-स्मरण

प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः॥ ७॥

१. हे **इन्द्रासोमा**-जितेन्द्रिय राजन् व सौम्य न्यायाधीश! आप **तुजयद्भिः**-शत्रुओं का संहार करनेवाले **एवैः**-कर्मों से **प्रति स्मरेथाम्**-प्रभु का स्मरण करो। आपका प्रभुस्मरण यही है कि आपकी क्रियाएँ शत्रु संहार करनेवाली हों। **द्रुहः**=द्रोह की वृत्तिवाले **भंगुरावतः**-तोड़फोड़ करनेवाले **रक्षसः**=राक्षसी वृत्तिवाले पुरुषों को **हतम्**=नष्ट करो। २. हे इन्द्र और सोम! आप ऐसी व्यवस्था करो कि **दुष्कृते**-अशुभ कर्म करनेवाले के लिए **सुगम्** सुगमता से इधर उधर जाना **मा भूत्** मत हो। **यः** जो भी **नः** हमें **कदाचित्** कभी **द्रुहुः**-द्रोह की वृत्तिवाला **अभिदासति**-

कमज़ोर करना चाहता है, उसके लिए इधर-उधर जाना सुगम मत हो।

भावार्थ—राजा व न्यायाधीश द्रोही व्यक्तियों को ऐसे दण्डित करें कि वे प्रजा में सुगमता से विचरण न कर सकें। इसप्रकार शत्रुओं का संहार ही वस्तुतः 'इन्द्र और सोम' का प्रभुस्मरण है।

ऋषिः　**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

असतः वक्ता असन् अस्तु

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।
आपइव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता॥ ८॥

१. **यः**=जो **पाकेन मनसा**=पवित्र मन से **चरन्तम्**-व्यवहार करते हुए **मा**=मुझे **अनृतेभिः वचोभिः**=असत्य दोष से **अभिचष्टे**-दोषारोपित करता है, वह **असतः वक्ता**=असत्य बोलनेवाला **असं अस्तु**=अविद्यमान सत्तावाला हो जाए, अर्थात् वह नष्ट हो जाए। २. हे **इन्द्र**- शत्रुविद्रावक राजन्! **इव**-जैसे **काशिना**=मुट्ठी से **संगृभीताः**=ग्रहण किये हुए **आपः**-जल नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार यह असत्य बोलनेवाला नष्ट हो जाए।

भावार्थ—राजा राष्ट्र में ऐसी व्यवस्था करे कि औरों पर झूठे दोष लगानेवाले लोग पनपें ही नहीं।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अहये प्रददातु

ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः।
अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे॥ ९॥

१. **ये**-जो **पाकशंसम्**=परिपक्व व पवित्र वचनोंवाले मुझे **एवैः**-अपने प्राप्तव्य कामों के हेतु से—अपने स्वार्थों के हेतु से **विहरन्ते**=विशिष्टरूप से अपहृत (क्षीण) करते हैं **वा**-अथवा **ये**-जो **भद्रम्**-शुभ कर्मरत मुझे **स्वधाभिः**=अपने वेतन आदि के बल से वेतनभोगी पुरुषों द्वारा **दूषयन्ति**=दूषित करते हैं। **सोमा**=न्यायाधीश **तान्**-उन्हें **अहये प्रददातु**-सर्प के लिए दे-दे—उन्हें सर्पदंशन द्वारा समाप्त करा दे **वा**=अथवा उन्हें **निर्ऋतिः उपस्थे**=मृत्यु की गोद में **आ दधातु**=स्थापित करे।

भावार्थ—सत्यवचन व भद्र कर्मोंवाले पुरुषों को क्षीण व नष्ट करनेवाले लोगों को सर्पदंश द्वारा व अन्य प्रकार से मृत्यु की गोद में स्थापित करना ही ठीक है।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'रिपु व स्तेन' को दण्डित करना

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम्।
रिपु स्तेन स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च॥ १०॥

१. हे **अग्ने**=राष्ट्र के अग्रणी राजन्! **यः**=जो **नः**=हमारे **पित्वः**=अन्न के **रसं दिप्सति**-सार को नष्ट करना चाहता है, **यः**-जो हमारी **अश्वानाम्**-कर्मेन्द्रियों की शक्ति (रस) को नष्ट करना चाहता है, **यः**=जो **गवाम्**=हमारी ज्ञानेन्द्रियों के रस को समाप्त करना चाहता है तथा **यः तनूनाम्**-जो हमारे शरीरों के रस को ही समाप्त करना चाहता है, वह **रिपुः**=हमारा विदारण करनेवाला **स्तेयकृत्**=चोरी करनेवाला **स्तेनः**=चोर **दभ्रम् एतु**-हिंसा को प्राप्त हो। **सः**-वह **तन्वा**=अपने शरीर से **च**-और **तना**-अपने पुत्रों से **निहीयताम्**-हीन हो।

भावार्थ—राजा ऐसे व्यक्तियों को अवश्य दण्डित करे जिनका लक्ष्य औरों के अन्नों व

शरीरों को नष्ट करना ही हो।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

हिंसक वृत्तिवाले का बहिष्कार

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम्॥ ११॥

१. **यः**-जो **मा**=मुझे **दिवा**-दिन में **दिप्सति**-हिंसित करना चाहता है **च यः**-और जो **नक्तम्**-रात्रि में हमें नष्ट करना चाहता है, हे **देवाः**-देवो! **अस्य यशः प्रतिशुष्यतु**-उसका यश सूख जाए—वह सर्वत्र बदनाम हो जाए। २. **सः**-वह जिघांसावाला व्यक्ति **तन्वा**=अपने शरीर से **तना च**-और अपने पुत्रों से **परः अस्तु**-दूर हो जाए। इसे शरीर व पुत्रों से वियुक्त कर दिया जाए। पुत्रों से इसका कोई सम्बन्ध न रहे, जिससे यह पुत्रों को भी अशुभ वृत्तिवाला न बना दे। यह व्यक्ति **विश्वाः**-प्राणियों का जिनमें प्रवेश है उन **तिस्राः**-तीनों **पृथिवीः**-लोकों के **अधः अस्तु**=नीचे हो, अर्थात् उनका तीनों लोकों से बहिष्कार हो जाए।

भावार्थ—औरों की जिघांसावाला मनुष्य अपकीर्ति को प्राप्त करे, शरीर व पुत्रों से वियुक्त हो, लोकत्रयी से उसका बहिष्कार हो।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सत्य Vs (बनाम) असत्य

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्॥ १२॥

१. **चिकितेषु जनाय**-एक समझदार व्यक्ति के लिए **सुविज्ञानम्**-यह बात सम्यग् जानने योग्य है कि **सत् च असत् च वचसी**-सत्य और असत्य वचन **पस्पृधाते**-परस्पर स्पर्धावाले होते हैं, इनमें परस्पर विरोध है। इनके विरोध को समझदार तुरन्त जान लेता है। **तयोः**-उन दोनों में से **यत्**-जो **सत्यम्**-सत्य है, **यतरत् ऋजीयः**-जो अधिक सरल है, **तत् इत्**-उसे ही **सोमः अवति**-वह शान्त प्रभु रक्षित करता है और **आसत् हन्ति**-असत्य को विनष्ट करता है।

भावार्थ—समझदार व्यक्ति सत्य और असत्य के विरोध को देखता हुआ सत्य को ग्रहण करता है और असत्य को छोड़ता है। प्रभु सत्यवादी का रक्षण करते हैं और असत्यवक्ता को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पाप व असत्य का विनाश

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते॥ १३॥

१. **सोमः**-वे शान्त प्रभु **वृजिनम्**-पाप को—पाप करनेवाले को **न वा उ**-निश्चय से नहीं **हिनोति**-बढ़ाते हैं। **मिथुया धारयन्तम्**-मिथ्या से—छलकपट से धारण करते हुए **क्षत्रियम्**-बलशाली पुरुष को भी **न**-वे प्रभु नहीं बढ़ाते हैं। २. वे प्रभु **रक्षः हन्ति**-राक्षसीवृत्तिवालों को नष्ट करते हैं। **असत् वदन्तम्**-झूठ बोलनेवाले को भी **हन्ति**-नष्ट करते हैं। **उभौ**-वे दोनों राक्षसीवृत्तिवाले व झूठ बोलनेवाले **इन्द्रस्य**-इस सर्वशक्तिमान् प्रभु के **प्रसितौ शयाते**-बन्धन में निवास करते हैं।

भावार्थ—प्रभु की व्यवस्था में पापी व मिथ्याचारी का वर्धन नहीं होता। राक्षसीवृत्तिवाले व झूठ बोलनेवाले का विनाश ही होता है।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'अनृतदेव' का हिंसन

यदि वाऽहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम्॥ १४॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **यदि वा अहम्**=यदि मैं **अनृतदेवः**=असत्य से व्यवहार करनेवाला **अस्मि**=हूँ (दिव् व्यवहारे) **वा**=अथवा **देवान्**=ज्ञानियों के समीप **अपि**=भी **मोघम् ऊहे** व्यर्थ का ही तर्क-वितर्क करता हूँ, श्रद्धाशून्य होता हुआ सत्य बात को समझने का प्रयत्न नहीं करता। यदि मैं ऐसा हूँ तब तो आप मुझे दण्डित कीजिए, अन्यथा हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **किम्**=क्यों **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **हृणीषे**=आप क्रोध करते हैं। हे प्रभो! हम 'अनृतदेव व व्यर्थ का तर्क-वितर्क' करनेवाले न होते हुए आपके प्रिय ही बनें। २. **द्रोघवाचः**=द्रोहयुक्त वाणीवाले ही **ते**=आपके **निर्ऋथम्**=हिंसन को **सचन्ताम्** प्राप्त करनेवाले हों। द्रोहयुक्त वाणीवाले ही आपके द्वारा हिंसित किये जाएँ।

भावार्थ—न हम असत्य व्यवहार करनेवाले हों और न ही व्यर्थ का तर्क-वितर्क करनेवाले हों। हम कभी द्रोहयुक्त वाणी का प्रयोग न करें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

न यातुधान, न सन्तापक

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह॥ १५॥

१. **यदि**=यदि मैं **यातुधानः**=पीड़ा का आधान करनेवाला राक्षस **अस्मि**=हूँ, तो **अद्या मुरीय**=आज ही मर जाऊँ। **यदि वा**=अथवा यदि **पूरुषस्य**=किसी भी पुरुष के **आयुः ततप**=जीवन को मैं सन्तप्त करता हूँ तो मैं उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँ। पापी बनने से मर जाना अच्छा है। २. परन्तु **यः**=जो **मा**=मुझे **मोघम्**=व्यर्थ ही **यातुधान इति आह**=पीड़ित करनेवाला कहता है, अर्थात् मुझपर व्यर्थ ही दोषारोपण करता हैं, **सः**=वह **दशभिः वीरैः**=दसों पुत्रों से—सब बन्धुओं से **वियूयाः**=पृथक् हो जाए। सब बन्धु उसे अच्छा न समझें और उसका सामाजिक बहिष्कार कर दें।

भावार्थ—न मैं राक्षसीवृत्तिवाला बनूँ और न ही किसी के जीवन को कष्टमय करनेवाला होऊँ।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

मिथ्या दोषारोपण का दण्ड

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट॥ १६॥

१. **यः**=जो **अयातुम्**=राक्षस न होते हुए **मा**=मुझे **यातुधान इति आह**='राक्षस' इस नाम से कहता है, **यः वा**=अथवा जो **रक्षाः**=राक्षसीवृत्तिवाला पुरुष **शुचिः अस्मि**='मैं पवित्र हूँ' **इति आह**=ऐसा कहता है, **इन्द्रः**=शत्रुविद्रावक प्रभु **तम्**=उसे **महता वधेन हन्तु**=महान् अस्त्र से नष्ट करे। २. ऐसा व्यक्ति **विश्वस्य जन्तोः**=सब प्राणियों से **अधमः पदीष्ट**=निकृष्ट होता हुआ गति करे, इसकी स्थिति सबसे नीचे हो।

भावार्थ—औरों पर मिथ्या दोषारोपण करनेवाला और अपने को पवित्र माननेवाला व्यक्ति

दण्डित हो तथा निकृष्ट स्थिति में रक्खा जाए।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

व्यभिचारिणी का दण्ड

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं१ गूहमाना।
वव्रमनन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः॥ १७॥

१. **या** जो **खर्गला इव** उलूकी के समान **नक्तम्**-रात्रि में **द्रुहुः**-पति के प्रति द्रोह की वृत्तिवाली होती हुई **तन्वं गूहमाना** अपने शरीर को छिपाती हुई, अर्थात् चुपके चुपके छद्मवेष में **अप प्रजिगाति**-घर से बाहर जाती है, अर्थात् व्यभिचारिणी (जारिणी) के समान आचरण करती है, **सा** वह **अनन्तं वव्रम्** अनन्त गहरे गड्ढे को **अवपदीष्ट**-जानेवाली हो—नरक कुण्डों में गिरनेवाली हो। २. **ग्रावाणः** उपदेष्टा लोग **उपब्दैः** ज्ञान के शब्दों से इन **रक्षसः** राक्षसी वृत्तिवाले लोगों को **घ्नन्तु**-प्राप्त हों (हन् गतौ) और इनके राक्षसीभावों को विनष्ट करें।

भावार्थ—व्यभिचार द्वारा पति के जीवन को कड़वा करनेवाली स्त्री अनन्त गड्ढों में गिरनेवाली हो। ज्ञानोपदेष्टा ज्ञान के शब्दों द्वारा इसकी इन बुरी वृत्तियों को विनष्ट करें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

रक्षापुरुषों का कर्त्तव्य

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वी३च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे॥ १८॥

१. हे **मरुतः** रक्षापुरुषो! **विक्षु** प्रजाओं में **वितिष्ठध्वम्** विशेषरूप से स्थित होओ। **इच्छत**-प्रजा पीड़कों को पकड़ने की कामना करो। **गृभायत** इनका निग्रह करो और **रक्षसः** इन राक्षसीवृत्तिवालों को **संपिनष्टन** संचूर्णित कर दो। २. उन व्यक्तियों को नष्ट कर डालो **ये**-जो **वयः भूत्वा**-(वी खादने) प्रजा के भक्षक बनकर **नक्तभिः पतयन्ति**-रात्रि में इधर-उधर औरों के विनाश के लिए गति करते हैं—जो 'नक्तंचर' हैं। **ये वा**-अथवा जो **देवे अध्वरे**-हमारे जीवनों को प्रकाशमय बनानेवाले यज्ञों में—हिंसारहित कर्मों में **रिपः दधिरे**-हिंसाओं को धारण करते हैं। यज्ञों में विघ्न करनेवाले इन राक्षसों को भी मरुत् दण्डित करें।

भावार्थ—प्रजा में विचरण करते हुए राजपुरुष दुष्टों को पकड़ें और उन्हें दण्डित करें। इन नक्तंचरों और यज्ञ विहन्ता पुरुषों को विनष्ट करें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

दुष्टों पर अश्म-प्रवर्तन

प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तो३भि जहि रक्षसः पर्वतेन॥ १९॥

१. हे **इन्द्र**-सब शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **दिवः**-अन्तरिक्षलोक से **अश्मानम्**=अशनि को (Thunder bolt) **प्रवर्तय**-प्रवृत्त कीजिए। इस अशनिरूप वज्र से दुष्टों का संहार कीजिए। हे **मघवन्** सर्वैश्वर्यवाले प्रभो! **सोमशितम्**-सोमरक्षण द्वारा बुद्धि को तीव्र बनानेवाले पुरुष को **संशिशाधि**=सम्यक् अनुशिष्ट कीजिए—इसे संस्कृत जीवनवाला बनाइए। २. **प्राक्तः अपाक्तः** पूर्व से व पश्चिम से, **अधरात् उदक्तः** दक्षिण से व उत्तर से, अर्थात् सब दिशाओं से **रक्षसः** राक्षसीवृत्तिवाले पुरुषों को **पर्वतेन** पर्ववाले वज्र से **अभिजहि** विनष्ट कीजिए।

भावार्थ—अपने को प्रभु का कार्यकर्त्ता समझता हुआ राजा दुष्टों को सब ओर से दण्डित

करे।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

श्वयातवः

एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम्।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः॥ २०॥

१. **एते**=ये **उ**=निश्चय से **त्ये**=वे **श्वयातवः**=कुत्तों की चालवाले—औरों को काटनेवाले राक्षस लोग **पतयन्ति**=इधर-उधर गतिवाले होते हैं। ये **दिप्सवः**=हिंसन की भावनावाले राक्षस **अदाभ्यम्**=अहिंसनीय **इन्द्रम्**=शासक राजा को भी **दिप्सन्ति**=नष्ट करना चाहते हैं, जिससे अराजक स्थिति में वे अपना कार्य अधिक क्रूरता से कर सकें। २. **शक्रः**=वह सर्वशक्तिमान् प्रभु इन **पिशुनेभ्यः**=निर्दयी पुरुषों (harsh, cruel) के लिए **नूनम्**=निश्चय से **वधम्**=हनन-साधन आयुध को **शिशीते**=तीक्ष्ण करते हैं, ये प्रभु **यातुमद्भ्यः**=पीड़ा देनेवाले लोगों के लिए **अशनिं सृजत्**=अशनिरूप वज्र को उत्पन्न करते हैं। इसप्रकार प्रभु की व्यवस्था से ये दुष्ट दण्डित होते हैं।

भावार्थ—औरों को पीड़ित व अराजकता पैदा करनेवाले लोग प्रभु की व्यवस्था से विनष्ट होते हैं।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'प्रजापीड़क, यज्ञ-विध्वंसक, आक्रामक' राक्षसों का विनाश

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्या३विवासताम्।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः॥ २१॥

१. **इन्द्रः**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु **यातूनाम्**=पीड़ा देनेवालों को **पराशरः अभवत्**=सुदूर विनष्ट करनेवाला होता है। **हविर्मथीनाम्**=यज्ञ के विध्वंसकों का तथा **अभि आविवासताम्**=हमारी आर आनेवालों, अर्थात् हमपर आक्रमण करनेवालों का विनाशक होता है। २. **शक्रः**=वह सर्वशक्तिमान् प्रभु **सतः**=प्राप्त होनेवाले **रक्षसः**=राक्षसों को इसप्रकार **भिन्दन् अभि एतु**=विदीर्ण करता हुआ आता है, **इव**=जैसेकि **इत् उ**=निश्चय से **परशुः वनम्**=कुल्हाड़ा वन को तथा **यथा**=जैसे मुद्गर **पात्रा**=पात्रों को नष्ट करता हुआ आता है।

भावार्थ—प्रभु 'प्रजापीड़क, यज्ञ-विध्वंसक, आक्रामक' राक्षसों का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उलूकयातुं, गृध्रयातुम्

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥ २२॥

१. **उलूकयातुम्**=उल्लू के समान गतिवाले **रक्षः**=राक्षस को हे **इन्द्र**=प्रभो! **दृषदा इव**=जैसे पत्थर से किसी वस्तु को मसल देते हैं, इसप्रकार **प्रमृण**=मसल डालिए। उल्लू अन्धकार में हिंसन करता है, इसी प्रकार अन्धकार में हिंसन करनेवाले चोरों को समाप्त कर दीजिए। २. **शुशुलूकयातुम्**=बड़े कर्कश स्वर में चीखनेवाले छोटे उल्लू की चालवाले राक्षस को **जहि**=मार डालिए। सदा कर्कश स्वर में ही बोलनेवालों को हमसे दूर कीजिए। ३. **श्वयातुम्**=कुत्ते की भाँति लड़ने झगड़ने—एक-दूसरे को काटनेवालों को नष्ट कीजिए, **उत**=और **कोकयातुम्**=चकवा-चकवी की भाँति कामासक्तिवाले को नष्ट कीजिए। ४. **सुपर्णयातुम्**=गरुड़ की भाँति अभिमान

की चालवाले को पीस डालिए, **उत** और **गृध्रयातुम्**-गिद्ध की भाँति लोभवृत्तिवाले को समाप्त कर दीजिए।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से हम 'अज्ञानान्धकार, कर्कश स्वर, ईर्ष्या-द्वेष, कामासक्ति, अभिमान व लोभ' से दूर हों।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः **भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

पार्थिव व दिव्य कष्टों से दूर

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान्॥ २३॥

१. हे प्रभो! **नः** हमें **यातुमावत् रक्षः**-कोई भी हिंसक राक्षसीभाव **मा अभिनट्** व्याप्त न कर ले। **किमीदिनः**-(किम् इदानीम् इति चरन्तः), अब किसका संहार करें—इसप्रकार सोचकर गति करते हुए ये **मिथुनाः** जो मिथुनभूत स्त्री पुमान् हैं, वे **अप उच्छन्तु**-हमसे दूर हो जाएँ। हमारा सम्पर्क इन राक्षसों व किमीदियों से न हो। २. **पृथिवी**-यह पृथिवी **नः**-हमें **पार्थिवात् अंहसः**-शरीररूप पृथिवी से होनेवाले कष्टों से **पातु**-रक्षित करे, तथा **अन्तरिक्षम्**-विशाल अन्तरिक्ष **अस्मान्**=हमें **दिव्यात्** मस्तिष्करूप द्युलोक से होनेवाले कष्ट से **पातु** बचाए। हमारे मस्तिष्करूप द्युलोक में कभी अन्धकार का राज्य न हो।

भावार्थ—हम राक्षसी वृत्तिवाले हिंसक लोगों के सम्पर्क से दूर रहें, पार्थिव व दिव्य कष्टों से बचे रहें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

मूरदेवाः ऋदन्तु

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम्॥ २४॥

१. हे **इन्द्र** शत्रु संहारक प्रभो! **पुमांस यातुधानम्**-पुरुष राक्षस को तो आप **जहि**-नष्ट कीजिए ही, **उत**-और **मायया**-प्रवञ्चन के द्वारा **शाशदानाम्**-हिंसन करती हुई **स्त्रियम्** स्त्री शरीरवाली राक्षसी को **उत**-भी आप विनष्ट कीजिए। २. **मूरदेवाः**-मारण ही जिनकी क्रीड़ा है (दिव् क्रीडायाम्), वे राक्षस **विग्रीवासः**-गर्दनरहित हुए हुए **ऋदन्तु**-नष्ट हो जाएँ। **ते**-वे **उच्चरन्तं सूर्यम्**=उदय होते हुए सूर्य को **मा दृशन्** न देखें, अर्थात् ये लोग दीर्घजीवी न हों।

भावार्थ—प्रजा को पीड़ित करनेवाले स्त्री पुरुष समाज से दूर हों, औरों को मारने में ही आनन्द लेनेवाले लोग विनाश को प्राप्त हों।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रतिचक्ष्व-विचक्ष्व

प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम्।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः॥ २५॥

१. हे **सोम**-शान्त स्वभाववाले न्यायाधीश। तू **च**-और **इन्द्रः**-यह शत्रुविद्रावक राजा **जागृतम्**-सदा जागते रहो—राष्ट्ररक्षा के लिए सदा सावधान रहो। **प्रतिचक्ष्व**-प्रत्येक दुष्ट को देखनेवाले होओ। **विचक्ष्व**-विशेषरूप से इनपर दृष्टि रक्खो, जिससे कि ये हमें पीड़ित न कर सकें। २. **रक्षोभ्यः**-इन राक्षसीवृत्तिवालों के लिए **वधम्**-हनन साधन आयुध को **अस्यतम्**-फेंको। **यातुमद्भ्यः**-पीड़ा देनेवालों के लिए **अशनिम्**=वज्र का प्रहार करो। राष्ट्र से राक्षसों व यातुधानों

को दूर रखना इन 'इन्द्र और सोम' का मुख्य कर्त्तव्य है। राक्षसों व यातुधानों से राष्ट्ररक्षा के लिए इन्हें सदा जागरित व सावधान रहना चाहिए।

भावार्थ—'इन्द्र' राजा है, 'सोम' न्यायाधीश। इन्हें राष्ट्र में राक्षसी वृत्तिवालों पर दृष्टि रखनी चाहिए और उन्हें उचित दण्ड देकर राष्ट्र का रक्षण करना चाहिए।

अगले सूक्त का ऋषि 'शुक्र' है। यह अपने अन्दर 'शुक्र' का रक्षण करता हुआ 'वीर्यवान्, सपत्नहा, शूरवीर, परिपाण व सुमंगल' बनता है—

५. [पञ्चमं सूक्तम्]

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः **उपरिष्टाद्बृहती** ॥

प्रतिसरो मणिः

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते।
वीर्य ∫ वान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः॥ १॥

१. **अयम्**-यह **मणिः**=वीर्यरूप मणि **प्रतिसरः**-(यः कृत्याः करोति तम् प्रतिसरति) हमारा हिंसन करनेवाले रोगों पर आक्रमण करती है। **वीरः**=(विविधम् ईरयति अपसारयति शत्रुम्) रोगों को कम्पित करके दूर करती है। **वीराय बध्यते** वीरतापूर्ण कार्यों को करने के लिए शरीर में बाँधी जाती है। इस मणि का शरीर में सुरक्षित रखना ही इसे शरीर में बाँधना है। २. इस मणि को शरीर में बाँधनेवाला पुरुष **वीर्यवान्**-शक्तिशाली बनता है। **सपत्नहा**=रोगरूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला होता है। **शूरवीरः**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला व रोगों को कम्पित करके दूर करनेवाला होता है। इसप्रकार **परिपाणः**-सब ओर से अपना रक्षण करनेवाला व **सुमङ्गलः**-उत्तम मङ्गलवाला होता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित किया गया वीर्य 'प्रतिसर मणि' है। यह रोगों पर आक्रमण करने-वाला है। इसे शरीर में सुरक्षित करनेवाला अपना रक्षण करता है और अपना मङ्गल सिद्ध करता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री** ॥

'सपत्नहा' मणिः

अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः।
प्रत्यक्कृत्या दूषयन्नेति वीरः॥ २॥

१. **अयम्** यह **मणिः**-वीर्यरूप मणि **सपत्नहा**-शरीरस्थ रोगरूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है। **सुवीरः**-रोगरूप शत्रुओं को कम्पित करनेवाला वीर है, **सहस्वान्**=बलवान् है। यह मणि **वाजी**-अत्यधिक शक्ति देनेवाली, **सहमानः**=शत्रुओं को कुचलनेवाली व **उग्रः**=उद्गूर्ण बलवाली है। २. यह **वीरः**-शत्रुओं को कम्पित करनेवाली मणि **प्रत्यक्**=हमारे अन्दर **कृत्याः**-छेदन-भेदन को **दूषयन्**-दूषित करती हुई—रोगों द्वारा उत्पन्न होनेवाली सब प्रकार की हिंसाओं को विनष्ट करती हुई **एति**=प्राप्त होती है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्यरूपी मणि रोगों का पराभव करती है। शरीर में रोग-जनित सब छेदन-भेदन को दूर करती है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिग्जगती** ॥

वृत्र-विनाश व असुर पराभव

अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान्पराभावयन्मनीषी।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत्प्रदिशश्चतस्रः॥ ३॥

१. **इन्द्रः** जितेन्द्रिय पुरुष **अनेन मणिना** इस वीर्यरूप मणि के द्वारा **वृत्रम् अहन्** ज्ञान पर आ जानेवाले 'काम' रूप आवरण को नष्ट करता है। सुरक्षित वीर्य ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और दीप्त ज्ञानाग्नि से काम का दहन होता है। **मनीषी** वीर्यरक्षण द्वारा सूक्ष्म बुद्धि को प्राप्त मनुष्य **अनेन**-इस वीर्यरूप मणि के द्वारा ही **असुरान्**-सब आसुरवृत्तियों को **परा अभावयत्**-सुदूर पराभूत करनेवाला होता है। २ **अनेन** इसके द्वारा ही **इमे उभे द्यावापृथिवी** इन दोनों द्यावापृथिवी को—मस्तिष्करूप द्युलोक व शरीररूप पृथिवी को **अजयत्**-जीतता है, मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त बनाता है तो शरीर को सशक्त करता है। **अनेन** इस वीर्यरूप मणि के द्वारा **चतस्त्रः प्रदिशः** चारों दिशाओं और उपदिशाओं को **अजयत्**-जीतनेवाला होता है। सब दिशाओं में इस वीर्यवान् पुरुष की शोभा होती है।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष वीर्यरक्षण द्वारा ज्ञानाग्नि को दीप्त करके उससे काम का विध्वंस करता है, सब आसुरीभावों को पराभूत करता है, मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त व शरीर को सशक्त बनाता है और सब दिशाओं में शोभावाला होता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'स्राक्त्यः मणिः'

अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः।
ओजस्वान्विमृधो वशी सो अस्मान्पातु सर्वतः॥ ४॥

१. **अयं मणिः** यह वीर्यरूप मणि **स्राक्त्यः** (स्रै पाके, अक् गतौ, त्य) तपस्या के द्वारा परिपाक की ओर गति करनेवालों में होनेवाली है। अपने को तपस्या की अग्नि में परिपक्व करनेवाला ही इसका रक्षण कर पाता है, विलासी पुरुष में इसका निवास नहीं होता। **प्रतीवर्तः** (प्रतिकूलं वर्तयति अनेन) शत्रुओं के मुख को मोड़ देनेवाला है। **प्रतिसरः**-यह वीर्य रोगरूप शत्रुओं पर धावा बोलनेवाला है। २. **ओजस्वान्**-यह हमें प्रशस्त ओजवाला बनाता है, **विमृधः** शत्रुओं का विमर्दन करनेवाला है और **वशी** सबको अपने वश में करनेवाला है। **सः**-वह मणि **अस्मान्** हमें **सर्वतः पातु**-सब ओर से रक्षित करे।

भावार्थ—यह वीर्यरूप मणि अपने को तपस्या की अग्नि में परिपक्व करनेवालों में रहती है। यह प्रतीवर्त व प्रतिसर है। यह हमें ओजस्वी बनाती है व हमारा रक्षण करती है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिक्संस्तारपङ्क्तिः** ॥

'अग्नि-सोम' आदि का महत्त्वपूर्ण कथन

तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु॥ ५॥

१. सोम (वीर्य)—रक्षण के द्वारा मनुष्य उन्नति करता हुआ 'अग्नि' बनता है। इससे शक्तिशाली बनकर 'सोम'—शान्त स्वभाववाला होता है। निर्बलता ही चिड़चिड़ेपन को पैदा करती है। वीर्य ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर हमें 'बृहस्पति' बनाता है। वीर्यरक्षण करनेवाला पुरुष निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त 'सविता' होता है, और शक्तिशाली बनकर शत्रुओं को दूर भगानेवाला 'इन्द्र' होता है। वीर्यरक्षक पुरुष ही दिव्य वृत्तियोंवाले 'देव' बनते हैं और सबका हित करनेवाले 'पुरोहित' होते हैं (पुरोहितवत् हितकारिणः)। २. यह **अग्निः** अग्रणी पुरुष **तत् आह** वही बात कहता है, **उ** और **सोमः**-शान्त पुरुष भी **तत् आह**-वही बात कहता है। **बृहस्पतिः** ज्ञानी, **सविता**-निर्माणकार्य-प्रवृत्त, **इन्द्रः** शत्रुविद्रावक पुरुष भी **तत्**-उस बात को ही कहता है। **ते** वे **पुरोहिताः** सबका पूर्ण हित करनेवाले **देवाः**-देववृत्ति के पुरुष **मे**-मेरे लिए यही कहते हैं कि लोगों को चाहिए कि **प्रतीचीः** अपनी ओर आनेवाली **कृत्याः** सब हिंसन क्रियाओं को

प्रतिसरैः शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाली वीर्यमणियों द्वारा **अजन्तु**-दूर भगा दें। सुरक्षित वीर्य ही हमें सब हिंसनों से बचाता है। यही हमें अग्नि आदि बनने की क्षमता प्रदान करता है।

भावार्थ—वीर्यरक्षण द्वारा सब हिंसकतत्त्वों को दूर करके हम 'अग्नि,सोम,बृहस्पति, सविता, इन्द्र, देव व पुरोहित' बनते हैं।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती** ॥

'द्यावापृथिवी' का अन्तःस्थापन

अ॒न्तर्द॑धे॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒ताह॑रु॒त सूर्य॑म्।
ते मे॑ दे॒वाः पु॒रोहि॑ताः प्र॒तीचीः॑ कृ॒त्याः प्र॑तिस॒रैर॑जन्तु॥ ६॥

१. वीर्यरक्षण द्वारा मैं **द्यावापृथिवी अन्तः दधे**=द्युलोक व पृथिवीलोक को अपने अन्दर सुरक्षित रूप से धारण करता हूँ। मस्तिष्करूप द्युलोक को व शरीररूप पृथिवी को अज्ञानान्धकार व रोगों का शिकार नहीं होने देता, **उत**=और **अहः**=दिन को, **उत**=और **सूर्यम्**=सूर्य को मैं अन्दर धारण करता हूँ। 'अहन्' शब्द अ-विनाश का सूचक है—शरीर को मैं रोगों से विनष्ट नहीं होने देता। 'सूर्य' ज्ञान के प्रकाश का प्रतीक है—मैं मस्तिष्क को ज्ञानसूर्य से दीप्त करता हूँ। २. **ते**-वे **देवाः**-दिव्य वृत्तिवाले **पुरोहिताः**=(पृ पालनपूरणयोः, पुरः च हिताः च) सबका पालन व पूरण करनेवाले तथा हित में प्रवृत्त व्यक्ति **प्रतीचीः**-अपने अभिमुख आनेवाली **कृत्याः**=हिंसाओं को **प्रतिसरैः**-रोगरूप शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाली वीर्यमणियों द्वारा **अजन्तु**-दूर भगा दें।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य 'मस्तिष्क व शरीर' के स्वास्थ्य का साधन बनता है। यह शरीर को रोगों से नष्ट नहीं होने देता तथा मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त बनाता है। वीर्यरक्षक, पुरोहित, देव रोगरूप शत्रुओं को दूर भगा देते हैं।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्** ॥

मणिरूप कवच

ये स्रा॒क्त्यं म॒णिं जना॒ वर्मा॑णि कृ॒ण्वते॑।
सूर्य॑इव॒ दिव॑मा॒रुह्य॒ वि कृ॒त्या बा॑धते व॒शी॥ ७॥

१. **ये**-जो **जनाः**-लोग **स्राक्त्यम्**-तपस्या के द्वारा अपने को परिपक्व बनानेवाले लोगों में निवास करनेवाली **मणिम्**=वीर्यरूप मणि को **वर्माणि कृण्वते**-अपना कवच बनाते हैं, उनके जीवन में यह वीर्यमणि **वशी**-सब रोगादि शत्रुओं को वशीभूत करता हुआ **सूर्यः इव दिवम् आरुह्य**-सूर्य जैसे द्युलोक में आरोहण करता है, उसी प्रकार मस्तिष्करूप द्युलोक में आरुढ़ होकर **कृत्याः**-सब प्रकार के हिंसनों को **विबाधते**=दूर रोकनेवाला होता है। २. वीर्यरूप मणि मस्तिष्करूप द्युलोक का ज्ञानसूर्य बनती है तथा शरीररूप पृथिवीलोक पर आक्रमण करनेवाले सब रोगरूप शत्रुओं को सुदूर विनष्ट करनेवाली होती है।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य हमारा कवच बनता है। यह रोगरूप शत्रुओं के आक्रमण से हमें बचाता है। मस्तिष्क में यह ज्ञानसूर्य के उदय का साधन बनता है और सब छेदन-भेदन को हमसे दूर रखता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्** ॥

ऋषिणा इव मनीषिणा

स्रा॒क्त्येन॑ म॒णिन॒ ऋषि॑णेव मनी॒षिणा॑।
अजै॑षं॒ सर्वाः॒ पृत॑ना॒ वि मृधो॑ हन्मि र॒क्षसः॑॥ ८॥

१. **स्राक्त्येन मणिना** अपने-आपको तपस्या की अग्नि में परिपाक करनेवालों में निवास करनेवाली इस वीर्यमणि के द्वारा **सर्वाः पृतनाः**-सब शत्रु सैन्यों को मैं **अजैषम्**=जीतता हूँ। २. **ऋषिणा इव** (ऋष् to kill) समस्त वासनाओं का संहार करनेवाले तत्त्वद्रष्टा की भाँति **मनीषिणा**-मुझे बुद्धिमान् बनानेवाली इस मणि के द्वारा **मृधः**-मेरा विमर्दन करनेवाले **रक्षसः**-राक्षसीभावों को **विहन्मि**=नष्ट करता हूँ।

भावार्थ—अपने आपको तपस्या की अग्नि में परिपाक करनेवाला व्यक्ति वीर्यरूप मणि को अपने में सुरक्षित करता है। यह वीर्यरूप मणि उसे सब संग्रामों में विजयी बनाती है और राक्षसीभावों को विनष्ट करती हुई उसे 'मनीषी ऋषि' बनानेवाली होती है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पुरस्कृतिर्जगती** ॥

'आङ्गिरसीः आसुरीः' कृत्याः

याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः।
उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्याऽअति॥ ९॥

१. **याः कृत्याः**-जो छेदन-भेदन—हिंसा प्रयोग **आङ्गिरसीः**-अङ्ग रसों से सम्बद्ध हैं, अर्थात् जिनका घातक प्रभाव 'रस रुधिर' आदि शरीर की धातुओं पर पड़ता है, **याः कृत्याः आसुरीः** जो हिंसन क्रियाएँ (असुषु रमन्ते) प्राणों में क्रीड़ा करनेवाली हैं, अर्थात् जिस छेदन-भेदन का घातक प्रभाव प्राणशक्ति पर पड़ता है, **याः कृत्याः स्वयंकृताः** जो छेदन भेदन की क्रियाएँ स्वयं आत्मदोष से उत्पन्न कर ली जाती हैं, **च उ**-और निश्चय से **याः अन्येभिः आभृताः** जो छेदन-भेदन की क्रियाएँ हमारे साथ सम्बद्ध अन्य पुरुषों से प्राप्त कराई जाती हैं, **ताः** वे **उभयीः** दोनों प्रकार की (स्वयंकृत या अन्याभृत) कृत्याएँ **नाव्याः नवतिम् अति**-नौकाओं से तैरने योग्य नव्वे महानदियों को लाँघकर **परावतः परायन्तु** दूर देश से भी दूर चली जाएँ—हमारे समीप उनका पहुँचना सम्भव ही न रहे। २. जैसे 'सात समुद्र पार' एक काव्यमय शब्द प्रयोग है, उसी प्रकार यहाँ नव्वे महानदियों के पार यह प्रयोग है। ये छेदन-भेदन हमसे दूर ही रहें। हमारे समीप न आ पाएँ। हमारे रस रुधिर आदि अङ्ग रसों पर इनका कुप्रभाव न हो, न ही हमारी प्राणशक्ति इन घातक प्रयोगों से प्रभावित हो। हमारे स्वयंकृत खान-पान के दोष इन हिंसाओं का कारण न बनें व अन्यों के साथ सम्पर्क इन हिंसनों को प्राप्त कराने का कारण न बने।

भावार्थ—न तो हमारे रस रुधिर आदि अङ्ग-रस और न ही हमारे प्राण छेदन भेदन को प्राप्त हों। न हमारे निजू दोषों से और न ही सम्बन्धित पुरुषों के दोषों से हमें छेदन भेदन प्राप्त हो।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

मणिबन्धन

अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे॥ १०॥

१. **अस्मै** इस साधक के लिए **देवाः** सब दिव्यवृत्तियाँ **मणिम्**-वीर्यरूप मणि को **वर्म बध्नन्तु** कवच के रूप में बाँधें। दिव्यवृत्तियाँ होने पर शरीर में वीर्यमणि सुरक्षित रहती है। यह रोगादि से बचानेवाले कवच की भाँति काम करती है। इन दिव्यवृत्तियों का ही परिणाम 'इन्द्रः, विष्णुः, सविता, रुद्रः, अग्निः, प्रजापतिः, परमेष्ठी, विराट् और वैश्वानरः' शब्दों से अभिव्यक्त हुआ है। ये सब नाम प्रभु के हैं। इन नामों से प्रभु का स्मरण करता हुआ यह साधक **इन्द्रः**-जितेन्द्रिय, **विष्णुः** (विष् व्याप्तौ) व्यापक—उदारवृत्तिवाला, **सविता**-निर्माण कार्यों में प्रवृत्त, **रुद्रः**-रोगों को दूर भगानेवाला, **अग्निः** अग्रणी—अपने को आगे-और-आगे ले चलनेवाला,

प्रजापतिः=प्रजा के रक्षण में तत्पर, **परमेष्ठी**-परम स्थान में स्थित—तम व रज से ऊपर उठकर सत्त्वगुण में स्थित, **विराट्**=विशिष्ट दीप्तिवाला व **वैश्वानरः**=सब मनुष्यों के हित में प्रवृत्त होता है। ये सब दिव्यवृत्तियाँ शरीर में वीर्यरूप मणि को कवचरूप में बाँधनेवाली बनती हैं। २. **च**-और **सर्वे ऋषयः**=सब ऋषि भी इस साधक के लिए इस वीर्यमणि को कवचरूप में बाँधनेवाले हों। 'ऋषि' तत्त्वद्रष्टा पुरुष हैं। ये उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त कराते हुए वृत्तियों के सुन्दर निर्माण के द्वारा वीर्य का रक्षण करानेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम दिव्य वृत्तियोंवाले व उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त करनेवाले बनकर वीर्यरूप मणि को शरीर में कवच के रूप में धारण करें। ये कवच हमें रोगों व वासनारूप शत्रुओं के आक्रमण से बचाएगा।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

सर्वोत्तम औषध

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वाञ्जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम्॥ ११ ॥

१. हे वीर्यमणे! तू **ओषधीनां उत्तमः असि**=ओषधियों में उत्तम है, सब रोगों को नष्ट करनेवाली—रोगों का आक्रमण ही न होने देनेवाली है। तू इसप्रकार उत्तम है, **इव**-जैसेकि **जगताम्**=गतिशील पशुओं में **अनड्वान्**=गाड़ी खेंचनेवाला बैल अथवा **इव**-जैसे **श्वपदाम् व्याघ्रः**=हिंस्र पशुओं में व्याघ्र। शरीर में सुरक्षित हुआ हुआ तू ही शरीर-रथ का संचालक है—इन्द्रियरूप घोड़ों में तेरी ही शक्ति काम करती है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ तू रोगरूप गीदड़ों के लिए व्याघ्र के समान होता है। २. तेरे शरीर में सुरक्षित होने पर **यम् ऐच्छाम तं अविदाम**-'स्वास्थ्य, नैर्मल्य व ज्ञानदीप्ति' रूप जिन ऐश्वर्यों को हम चाहते हैं, उन्हें प्राप्त करनेवाले बनते हैं। तेरे शरीर में सुरक्षित होने पर हम **प्रतिस्पाशनम्**=(स्पश् to obstruct) शत्रुरूप बाधक को—विरोधी के रूप में आक्रमण करनेवाले को **अन्तितम्**=(अन्तःजातः अस्य) समाप्त किया हुआ प्राप्त करें—इन शत्रुओं को नष्ट कर पाएँ।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य सर्वोत्तम औषध है। यह जीवन की गाड़ी को चलाता है, विघ्नभूत रोगादि को विनष्ट करता है। इसके द्वारा वाञ्छनीय सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं और विरोधी तत्त्व विनष्ट होते हैं।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

व्याघ्रः सिंहः इव

स इद्व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा। अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम्॥ १२ ॥

१. **यः**-जो भी **इमं मणिं बिभर्ति**=इस वीर्यरूप मणि को धारण करता है, **सः इत्**-वह ही **व्याघ्रः भवति**=व्याघ्र होता है, **अथो सिंहः**=और शेर के समान ही होता है। व्याघ्र व सिंह के समान यह सब शत्रुओं को शीर्ण करने में समर्थ होता है। **अथो वृषा**-अब यह सब अङ्ग प्रत्यङ्गों में शक्ति का सेचन करनेवाला होता है। २. इसप्रकार सब अङ्गों को बलवान् बनाकर **अथो**-अब यह **सपत्नकर्शनः**=सब शत्रुओं का विनाशक होता है। न तो रोग और न ही वासनाएँ इसे अभिभूत कर पाती हैं।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्यमणि हमें सिंह व व्याघ्र के समान शत्रुओं के अभिभव में समर्थ करती है और सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों में शक्ति का सेचन करती हुई हमारे सब रोगरूप शत्रुओं को नष्ट करती है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

न अप्सरसः, न गन्धर्वाः, न मर्त्याः

नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम्॥ १३॥

१. **यः**-जो **इमं मणिं बिभर्ति**-इस वीर्यरूपमणि को धारण करता है, **एनम्**-इसे **अप्सरसः** (अप्सु सरन्ति) यज्ञादि कर्मों में गतिवाले कर्मकाण्डी **न घ्नन्ति**-(हन् to conquer) पराजित नहीं कर पाते, अर्थात् यह यज्ञों में उनसे पीछे नहीं रहता। **न गन्धर्वाः**-ज्ञान की वाणियों को धारण करनेवाले ज्ञानी भी इसे पराजित नहीं कर पाते। यह ज्ञानियों में अग्रभाग में स्थित होता है। २. इसी प्रकार इस वीर्यरूप मणि के धारक को **न मर्त्याः** सामान्य धनार्जन में प्रवृत्त मनुष्य भी पराजित नहीं कर पाते। यह वीर्य-रक्षण उसे यज्ञादि कर्म करने, ज्ञानोपार्जन व धनार्जन में क्षमता प्रदान करता है। इसप्रकार यह वीर्य रक्षक पुरुष **सर्वाः दिशः विराजति**-सब दिशाओं में शोभावाला होता है।

भावार्थ—वीर्य का धारण मनुष्य को सब क्षेत्रों में विजयी बनाता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**षट्पदाजगती** ॥

'सहस्रवीर्यमणि' रूप कवच

कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत्।
अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत्संश्रेषिणेऽजयत्।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत॥ १४॥

१. हे वीर्यमणे! **कश्यपः**-सर्वद्रष्टा प्रजापति ने **त्वाम् असृजत्**-तुझे उत्पन्न किया है। **कश्यपः**-वह सर्वद्रष्टा प्रजापति ही **त्वा समैरयत्**-तुझे सर्वोपकार के लिए सम्यक् प्रेरित करता है। **त्वा**-तुझे **इन्द्रः अबिभः**-एक जितेन्द्रिय पुरुष अपने में धारण करता है। **मानुषे**-(मानुषेषु मध्ये—सा०) मनुष्यों में जो भी पुरुष तुझे **बिभ्रत्** धारण करता है, वह **संश्रेषिणे**-परस्पर संश्लेषण के स्थानभूत संग्राम में **अजयत्**-विजयी होता है। २. इसप्रकार इस स्राक्त्य मणि के महत्त्व को समझते हुए **देवाः**-ज्ञानी पुरुष **सहस्रवीर्यम् मणिम्** इस अनन्त शक्तिशाली मणि को **वर्म अकृण्वत** अपना कवच बनाते हैं। इस कवच से सुरक्षित हुए-हुए वे रोगादि से आक्रान्त नहीं होते।

भावार्थ—प्रभु ने इस वीर्यमणि को जन्म दिया है, प्रभु ने सर्वोपकार के लिए इसे हममें स्थापित किया है। जितेन्द्रिय पुरुष इसे धारण करता है। इसका धारक संग्राम में विजयी बनता है। यह 'सहस्रवीर्य मणि' देवों का कवच है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पुरस्ताद्बृहती** ॥

दीक्षामय व यज्ञमय जीवन

यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति।
प्रत्यक्त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा॥ १५॥

१. **यः** जो **त्वा** तुझे **कृत्याभिः**-छेदन-भेदन की क्रियाओं से **जिघांसति**-जीतने की कामना करता है, **यः** जो **त्वा**-तुझे **दीक्षाभिः** व्रतों द्वारा (वाग्यमन 'मौन' आदि नियमविशेषों से) जीतना चाहता है, **यः त्वा**=जो तुझे **यज्ञैः**-यज्ञों के द्वारा जीतने की कामना करता है, हे **इन्द्र**-जितेन्द्रिय पुरुष! **त्वम्** तू **तं प्रत्यक्**-उसके अभिमुख **शतपर्वणा**-शतवर्षपर्यन्त तेरा पूरण

करनेवाले **वज्रेण**-इस वीर्यमणिरूप वज्र के द्वारा **जहि**-जानेवाला हो (हन् गतौ)। २. यह वीर्यमणिरूप वज्र जहाँ तुझे छेदन-भेदन का शिकार न होने देगा, वहाँ तू इसके द्वारा 'दीक्षा व यज्ञों' में किसी से पराजित नहीं होगा। इस मणि-रक्षा से तेरा जीवन भी दीक्षामय व यज्ञमय बन जाएगा।

भावार्थ—वीर्यमणिरूप वज्र हमारा शतवर्षपर्यन्त पूरण करनेवाला होता है। यह हमारे जीवन को दीक्षामय व यज्ञमय बनाता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

परिपाणः, सुमङ्गलः

अयमिद्वै प्रतीवर्त ओजस्वान्त्संजयो मणिः।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः॥ १६॥

१. **अयं मणिः**-यह वीर्यरूपमणि **इत् वै**=निश्चय से **प्रतीवर्तः**=कृत्याओं के पराङ्मुख करने का साधन है। यह हमें रोगादि जनित छेदन-भेदन से बचानेवाली है। **ओजस्वान्**-यह हमें ओजस्वी बनाती है और **सञ्जयः**=सम्यक् विजयी करती है। २. शरीर में सुरक्षित यह वीर्यमणि **प्रजां धनं च**=प्रजा और धन की **रक्षतु**=रक्षा करे, अर्थात् हमें उत्तम प्रजावाला और उत्तम साधनों से धन कमाने योग्य बनाए। यह **परिपाणः**-सब प्रकार से हमारी रक्षक है और **सुमङ्गलः**-उत्तम कल्याण करनेवाली है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य सब छेदन-भेदन को दूर रखनेवाला है। यह हमें ओजस्वी बनाकर विजयी बनाता है, उत्तम प्रजा व उत्तम धनवाला बनाता है। यह हमारा रक्षण व मङ्गल करनेवाला है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

असपत्नम् ज्योतिः

असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात्।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि॥ १७॥

१. हे प्रभो! इस वीर्यमणि के द्वारा **नः**-हमें **अधरात्**-दक्षिण दिशा से **असपत्नम्**-शत्रुरहित **कृधि**=कीजिए। इसी प्रकार **उत्तरात्**-उत्तर दिशा से भी **नः**=हमें **असपत्नम्**=शत्रुरहित कीजिए। हे **इन्द्र**-सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **नः**=हमें **पश्चात्**-पश्चिम दिशा से भी **असपत्नम्**=शत्रुराहित कीजिए। **पुरः**-सामने से वा पूर्व से भी शत्रुरहित कीजिए। २. इस वीर्यमणिरूप कवच को धारण करने पर हमें किसी भी दिशा में रोगादि शत्रुओं का भय न हो। हे **शूर**=हमारे शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! हमारे लिए आप **ज्योतिः (कृधि)**=प्रकाश करनेवाले होओ।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्यमणि हमें सब दिशाओं में शत्रुरहित करके ज्योतिर्मय जीवनवाला बनाए।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

इन्द्र, अग्नि व धाता

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माऽहर्वर्म सूर्यः।
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे॥ १८॥

१. **द्यावापृथिवी**-द्युलोक व पृथिवीलोक—मस्तिष्क व शरीर **मे**-मेरे लिए **वर्म**-कवच को **दधातु**=धारण कराएँ। **अहः**-दिन (अ हन्) समय को नष्ट न करने की वृत्ति **वर्म**=कवच को

धारण कराए। **सूर्यः**-ज्ञान का सूर्य **वर्म**-कवच को धारण कराए। वीर्यमणि ही कवच है। इस कवच को धारण करनेवाला मस्तिष्करूप द्युलोक को दीप्त बनाता है, शरीररूप पृथिवीलोक को दृढ़ बनता है। इस कवच को धारण करनेवाला सारे दिन उत्तम कार्यों में प्रवृत्त रहता है और अपने जीवन में ज्ञानसूर्य को उदित करता है। २. **मे**=मेरे लिए **इन्द्रः च अग्निः च**-इन्द्र और अग्नि **वर्म** इस कवच को धारण कराएँ। जितेन्द्रिय व आगे बढ़ने की भावनावाला बनकर मैं इस वीर्य को अपने में सुरक्षित करूँ। **धाता** वह धारक प्रभु **मे**-मुझे **वर्म**-वीर्यमणिरूप कवच धारण कराए। धारणात्मक कर्मों में लगा हुआ मैं इस वीर्यमणि को अपने में सुरक्षित करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—वीर्य को अपने अन्दर वह धारण कर पाता है जो अपने मस्तिष्क व शरीर को दीप्त व दृढ़ बनाने का निश्चय करता है (द्यावापृथिवी), जो दिन में एक-एक क्षण को यज्ञादि उत्तम कर्मों में बिताता है (अहः), अपने अन्दर ज्ञानसूर्य को उदित करने के लिए यत्नशील होता है (सूर्यः)। यह जितेन्द्रिय (इन्द्र),आगे बढ़ने की वृत्तिवाला (अग्नि), धारणात्मक कर्मों में प्रवृत्त व्यक्ति (धाता) ही इस वीर्य को अपना कवच बना पाता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगतीगर्भात्रिष्टुप्** ॥

ऐन्द्राग्नं वर्म

ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वेदेवा नाति विध्यन्ति सर्वे।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्मां जरदष्टिर्यथासानि॥ १९॥

१. यह **ऐन्द्राग्नम्**-इन्द्र और अग्नि का—जितेन्द्रिय व आगे बढ़ने की वृत्तिवाले पुरुष से धारण किया जानेवाला वीर्यरूप **वर्म** कवच **बहुलम्**=(बहून् अर्थान् लाति) 'स्वास्थ्य, नैर्मल्य व दीप्ति' रूप अनेक अर्थों को प्राप्त करानेवाला है। **यत्**-जो यह कवच **उग्रम्**-उद्गूर्ण बलवाला है (बढ़े हुए बलवाला है), **सर्वे**-सारे **विश्वे** शरीर में प्रविष्ट होनेवाले **देवाः** देव **न अतिविध्यन्ति** इसका अति वेधन नहीं कर पाते, अर्थात् कोई भी देव इससे बढ़कर नहीं है। वस्तुतः सब देवों की स्थिति इसके ही कारण है। शरीर में वीर्य के सुरक्षित होने पर ही यहाँ सब देवों का वास होता है। चक्षु आदि के रूप में रहनेवाले सूर्यादि देव इस वीर्यमणि से ही शक्ति प्राप्त करते हैं। २. **तत्**-वह वीर्यमणिरूप वर्म **मे**-मेरे **तन्वम्**=शरीर को **सर्वतः त्रायताम्**=सब ओर से रक्षित करे। **यथा** जिससे **बृहत्**=वृद्धि को प्राप्त होता हुआ मैं **आयुष्मान्** प्रशस्त जीवनवाला **जरदष्टिः** पूर्ण जरावस्था का—शतवर्षपर्यन्त जीवन का व्यापन करनेवाला **असानि** होऊँ।

भावार्थ—जितेन्द्रिय व आगे बढ़ने की वृत्तिवाले बनकर हम वीर्य का रक्षण करें। यह चक्षु आदि सब इन्द्रियों की शक्ति को स्थिर करनेवाला हो। यह मेरे शरीर का रक्षक हो। मैं इसके द्वारा प्रशस्त दीर्घजीवन प्राप्त करूँ।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**विराड्गर्भाऽऽस्तारपङ्क्तिः** ॥

देवमणिः

आ मारुक्षद्देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे॥ २०॥

१. **देवमणिः** प्रभु द्वारा शरीर में स्थापित की गई यह वीर्यरूपमणि **मा आरुक्षत्**-मेरे शरीर में सर्वतः आरोहणवाली होती है। शरीर में मैं इसकी ऊर्ध्व गति करनेवाला बनता हूँ। यह **मह्यै** (महत्यै) महती **अरिष्टतातये** अहिंसा के लिए होती है। यह सब हिंसनों को दूर करके क्षेम (कल्याण) का साधन बनती है। २. **इमम्** इस **मेथिम्**-शत्रुओं का विलोडन करनेवाली—

रोगादि का विनाश करनेवाली देवमणि को **अभिसंविशध्वम्**=अभितः सम्यक् सँभालकर रखनेवाले बनो। शरीर में यह तुम्हें नीरोग बनाये और मस्तिष्क में ज्ञानदीप्त। इस मणि का तुम आश्रय करो जोकि **तनूपानम्**-शरीर का रक्षण करनेवाली है, **त्रिवरूथम्**-त्रिविध आवरण से युक्त है—शरीर को रोगों से बचाती है, मन को वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देती तथा बुद्धि को लोभ से उपहत नहीं होने देती। यह मणि **ओजसे**=हमारे ओज के लिए होती है—हमें ओजस्वी बनाती है।

भावार्थ—शरीर में वीर्य की ऊर्ध्व गति होने पर यह हमारे अहिंसन का कारण बनता है। शत्रुओं का विध्वंस करके यह 'शरीर,मन व बुद्धि' का रक्षक आवरण बनता है। हमें ओजस्वी बनाकर शरीर-रक्षण के योग्य बनाता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥

दीर्घायुत्वाय शतशारदाय

अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम्।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासत्॥ २१॥

१. **इन्द्रः**-वह सर्वशक्तिमान् प्रभु **अस्मिन्**=इस वीर्यरूप देवमणि में **नृम्णं नि दधातु** बल स्थापित करे। हे **देवासः**-देववृत्ति के पुरुषो! तुम **इमम्**=इस वीर्यमणि को **अभिसंविशध्वम्**-अभितः सम्यक् आश्रित करो, इसे शरीर में ही व्याप्त करने का प्रयत्न करो। २. इसलिए तुम इसे शरीर में ही समाविष्ट करो, जिससे यह **शतशारदाय दीर्घायुत्वाय**=सौ वर्षों के दीर्घजीवन के लिए हो। इसे मनुष्य इसलिए धारण करे **यथा**=जिससे वह **आयुष्मान्**-प्रशस्त जीवनवाला व **जरदष्टिः**=पूर्ण जरावस्था को प्राप्त करनेवाला **असत्**=हो।

भावार्थ—प्रभु ने इस वीर्यमणि में बल की स्थापना की है। देववृत्ति के लोग इसका रक्षण करते हैं और प्रशस्त दीर्घजीवनवाले होते हैं।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**सप्तपदाविराड्गर्भाभुरिक्शक्वरी** ॥

स्वस्तिदाः—अपराजितः

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।
इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा।
स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः॥ २२॥

१. **स्वस्तिदा**-कल्याण करनेवाला, **विशां पतिः**-प्रजाओं का रक्षक **वृत्रहा**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को नष्ट करनेवाला, **विमृधः**=शत्रु-विनाशकारी, **वशी**=सबका वशयिता, **इन्द्रः**-परमैश्वर्यशाली प्रभु **ते मणिं बध्नातु**-तेरे शरीर में इस वीर्यमणि को बाँधे। प्रभुकृपा से वीर्य शरीर में ही सुरक्षित हो। वस्तुतः इस वीर्य के द्वारा ही प्रभु हमारे लिए कल्याण व विजय प्राप्त करानेवाले होते हैं। २. वे प्रभु **जिगीवान्**-जयशील हैं, **अपराजितः**-कभी पराजित नहीं होते, **सोमपाः**-प्रभु ही हमारे शरीर में सोम (वीर्य) का पान करनेवाले हैं। इस सोमपान द्वारा **अभयंकरः**-हमें निर्भयता प्राप्त कराते हैं और **वृषा**=हमारे लिए सब सुखों का सेचन करते हैं। **सः**=वे 'अभंयकर वृषा' प्रभु इस मणिबन्धन द्वारा **त्वा**=तुझे **सर्वतः रक्षतु**=सब भयनिमित्तों से बचाएँ। वे प्रभु **दिवा नक्तं च**=दिन और रात **विश्वतः**=सब ओर से रक्षित करें।

भावार्थ—प्रभु ने शरीर में इस वीर्यमणि का बन्धन किया है। इसप्रकार प्रभु हमें कल्याण व विजय प्राप्त कराते हैं। यह वीर्यमणि दिन-रात सब ओर से हमारा रक्षण करती है।

अगले सूक्त की ऋषिका 'मातृनामा' है। यह अपनी युवति कन्या के लिए उत्तम पति का

वरण करती हुई सचमुच 'उत्तम परिवार का निर्माण करनेवाली' होने से मातृनामा कहलायी है। विषय (देवता) भी यही है। कैसे पति का वरण करना है? इस विचार से सूक्त का आरम्भ होता है—

॥ इत्यष्टादशः प्रपाठकः ॥

अथैकोनविंशः प्रपाठकः

६. [षष्ठं सूक्तम्]

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

दुर्णामा तथा अलिंश वत्सप

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ।
दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः॥ १॥

१. हे युवति! **जातायाः ते** (जनी प्रादुर्भावे) यौवन के ठीक रूप से प्रादुर्भाववाली तेरे लिए **पति-वेदनौ** पति के रूप में प्राप्त होनेवाले **यौ**-जिनको **माता**-तेरी माता ने **उन्ममार्ज** (ऊर्ध्वमुखं ममार्ज, पत्युः परिग्रहाय परिहृतवती—सा०) स्पष्ट ही अस्वीकार कर दिया है। वे दोनों ही **तत्र मा गृधत्**=तुझ युवति के साथ विवाह के लिए आकांक्षा न करें। २. उनमें से एक तो **दुर्णामा** कुष्ठ या अर्श (बवासीर) नामक पापरोगवाला है, **उत**-और दूसरा **अलिंशः**-(अलिं श्यति—अल्-शक्ति) शक्ति को क्षीण करनेवाला, अतएव **वत्सपः** (वत्सपिवः)-बच्चों को पी जानेवाला—शिशुनाशक है।

भावार्थ—वर के वरण के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वह कुष्ठ व अर्श आदि पापरोगों से पीड़ित न हो तथा क्षीणशक्ति और शिशुनाशक न हो।

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा** ॥ छन्दः—**पुरस्ताद्बृहती** ॥

'पलाल-अनुपलाल' विवाह के लिए निषिद्ध

पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम्।
आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम्॥ २॥

१. माता इन व्यक्तियों को भी वरण में अस्वीकार कर दे—**पलाल-अनुपलालौ** जो तृण की भाँति है—अति निर्बल है, अथवा सींकया सा प्रतीत होता है। **शर्कुम्** 'शम् शम् इति कौति' जिसकी आवाज़ शरशराती सी है। **कोकम्** चक्रवाक के स्वभाववाला, अथवा (A wolf) भेड़िये कि भाँति बहुत खानेवाला है। **मलिम्लुचम्**-चोरी की वृत्तिवाला—मलिन स्वभाववाला है, **पलीजकम्**-पलित केशोंवाला—वृद्ध सा है। **आश्रेषम्**-(आश्लिष्य हन्तारम्) जो आलिङ्गन से पीड़ित करनेवाला—किसी संक्रामक रोग से पीड़ित है, **वव्रिवाससम्**-(रूपोपेतवसनवन्तम्) दिखावे के लिए तड़क-भड़क के कपड़े पहने हुए है। **ऋक्षग्रीवम्**-रीछ की भाँति गर्दनवाला है तथा **प्रमीलिनम्**-चुँधी चुँधी आँखोंवाला है।

भावार्थ— माता पिता अपनी कन्या के लिए इन 'पलाल,अनुपलाल' आदि का भी वरण न करें।

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

दुर्णामचातन 'बज'

मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोऽन्तरा।
कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम्॥ ३॥

१. दुर्नामाख्यरोगाभिमानिन्! तू इस युवति के **ऊरू अन्तरा**=ऊरूओं के मध्य में **मा संवृतः**=संवृति—संकोच मत कर तथा **मा उपसृपः**=उपसर्पण—अन्तःप्रवेश मत कर और ऊरूओं के बीच में **मा अवसृपः**=नीचे की ओर गति न कर। २. मैं **अस्यै**=इस युवती के लिए **दुर्णामचातनम्**=दुर्नामाख्य दोष के विनाशक **बजम्**=श्वेत सर्षपरूप **भेषजम्**=औषध को **कृणोमि**=करता हूँ।

भावार्थ—श्वेत सर्षप का प्रयोग दुर्नामाख्य रोग का विनाशक है।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

दुर्णामा बनाम सुनामा

दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः।
अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम्॥ ४॥

१. **दुर्णामा च**=दुष्टरोगाक्रान्त पुरुष और **सुनामा च**=उत्तम रूपादियुक्त सुगुण पुरुष **उभा**=दोनों **संवृतम्**=संवरण को—स्वयंवर पर वरे जाने को **इच्छतः**=चाहते हैं। विवाहित होने की इच्छा स्वाभाविक हैं। रोगी भी विवाहित होना चाहता ही है। २. परन्तु हम इस अवसर पर **अरायान्**=अलक्ष्मीक—उत्तम गुण-सम्पत्तिरहित पुरुष को **अपहन्मः**=दूर भगाते हैं। **सुनामा**=उत्तम गुण सम्पत्तिवाला यशस्वी पुरुष ही **स्त्रैणम्** स्त्री-शरीर को (स्त्रियाः सम्बन्ध्यङ्गम्—सा०) **इच्छताम्**=चाहे—वही इसे प्राप्त करे।

भावार्थ—दुर्नामाख्य रोगपीड़ित पुरुष के साथ हम युवति कन्या का सम्बन्ध न करें। अलक्ष्मीक पुरुषों को दूर भगाकर यशस्वी पुरुष से ही उनका सम्बन्ध करें।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'अराय' पुरुष

यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोप हन्मसि॥ ५॥

१. **यः कृष्णः**=जो अति कृष्णवर्ण का है, **केशी**=बहुत अधिक बालोंवाला है—सब स्थानों पर बाल-ही-बालवाला है, **असुरः**=असुर—राक्षस-सा प्रतीत होता है, केवल प्राणपोषी (खाऊ-पीऊ) है **स्तम्बजः**=(स्तम्बेः जातः) जंगली-सा प्रतीत होता है, **उत**=और **तुण्डिकः**=कुत्सित मुखवाला है—इन सब **अरायान्**=अलक्ष्मीक पुरुषों को **अस्याः**=इस युवति के **मुष्काभ्याम्**=मुष्कों से—अण्डकोषों से (व्यक्तं पुंसो न तु स्त्रियाः०) तथा **भंससः**=कटिसन्धिप्रदेश से **अपहन्मसि**=दूर करते हैं।

भावार्थ—कृष्ण, केशी, असुर, स्तम्बज व तुण्डिक पुरुष स्त्री-सम्बन्ध के अयोग्य हैं।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अनुजिघ्र आदि कृमियों का विनाश

अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम्।
अरायांछ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत्॥ ६॥

१. **अनुजिघ्रम्**=(आघ्रायैव हिंसकम्) सूँघकर ही हिंसित करनेवाले **प्रमृशन्तम्**=(प्रमृश्यैव हन्तारं) छूकर नष्ट करनेवाले, **क्रव्यादम्**=मांस खा जानेवाले—हमें अमांस बना देनेवाले, **उत**=और **रेरिहम्**=(लीढ्वैव हन्तारम्) चाटकर नष्ट कर देनेवाले—इन सब **अरायान्**=अलक्ष्मी के कारणभूत रोगकृमियों को जोकि **श्वकिष्किणः**=(किष्क हिंसायाम्) कुत्ते की भाँति हिंसित

करनेवाले हैं, **पिङ्गः बजः** पिशङ्गवर्ण का सर्षप **अनीनशत्**-खूब ही नष्ट कर डालता है।

भावार्थ—अनुजिघ्र, प्रमृशन्, क्रव्याद्, रेरिह नामक कुत्ते के समान हिंसन करनेवाले सभी रोगकृमियों को पिशङ्गवर्ण सर्षप नष्ट कर डालता है।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

गर्भिणी-रक्षण

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः॥ ७॥

१. हे वरवर्णिनि! **यः** जो पुरुष **भ्राता**-भाई **च**-अथवा **पिता इव भूत्वा**-पिता का सा रूप बनाकर **स्वप्ने**=स्वप्नावस्था में **निपद्यते** नीचभाव से तेरे समीप आता है, **तान्** उन सब दुष्टभावयुक्त **क्लीबरूपान्** नंपुसक **तिरीटिनः**-टेढ़े मार्ग पर जानेवाले पुरुषों को **बजः** शक्तिशाली—क्रियाशील पति **इतः सहताम्**-इस कुत्सित मार्ग से पराभूत करे।

भावार्थ—पति गर्भिणी युवति का इसप्रकार रक्षण करे कि कोई भी व्यक्ति छिपकर स्वप्नावस्था में भी उससे दुराचार न कर सके।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

छायाम् इव सूर्यः

यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम्।
छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत्॥ ८॥

हे गर्भिणी! **यः** जो **त्वा** तुझे **स्वपन्तीम्**-सोई हुई को **त्सरति** छल से प्राप्त होता है, **यः**-जो **त्वा** तुझे **जाग्रतीम्** जागती हुई को **दिप्सति**-पीड़ित करना चाहता है-दबाना चाहता है, **तान्** उन्हें **इव**- जैसे **सूर्यः छायाम्**-सूर्य छाया को नष्ट करता है, उसी प्रकार **परिक्रामन्** अपने कर्त्तव्यकर्मों में गति करता हुआ (बज) पुरुषार्थी पति **अनीनशत्**-सुदूर अदृष्ट करे। पति ऐसी व्यवस्था करे कि कुटिल पुरुषों का उसके घर पर आना ही न हो।

भावार्थ—कर्त्तव्य-परायण पुरुषार्थी पति को गृहरक्षा की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि कोई भी कुटिलपुरुष उसके घर में न आ सके, न ही वह स्त्रियों के साथ अशुभ व्यवहार कर सके।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

न मृतवत्सा, न अवतोका

यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम्।
तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम्॥ ९॥

१. **यः** जो रोग **इमां स्त्रियम्**-इस स्त्री को **मृतवत्साम्**-मृत पुत्रा अथवा **अवतोकाम्**-अवपन्न (विनष्ट) गर्भवाली **कृणोति**-करता है, हे **ओषधे**-ओषधे! **त्वम्**-तू **अस्याः** इस स्त्री के **तम्**-उस रोग को **नाशय**-नष्ट कर दे। इस रोगविनाश से इसका **कमलम्**-गर्भद्वार **अञ्जिवम्**-अभिव्यक्तिवाला (Shining, brilliant) अथवा स्निग्ध (slippery, smooth) श्लक्ष्णोपेत हो जाए।

भावार्थ—ओषधि के प्रयोग से इस गर्भिणी के गर्भद्वार को इसप्रकार शुद्ध व स्निग्ध किया जाए कि इसकी सन्तान न मृत हो, न अवपन्न हो, अर्थात् यह स्वस्थ सन्तान को जन्म दे सके।

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा** ॥ छन्दः—**षट्पदाजगती** ॥

कृमिविनाश

ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः।
कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः।
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान्वि नाशय॥ १०॥

१. **ये**=जो भी रोगकृमि **सायं गर्दभनादिनः**-सायं गधे की भाँति शब्द करते हुए **शालाः परिनृत्यन्ति**=गृहों के चारों ओर नृत्य सा करते प्रतीत होते हैं, ये **कुसूलाः**=जो कुसूल की आकृतिवाले हैं अथवा चिपट जानेवाले हैं(कुस संश्लेषणे), **च**=और **कुक्षिलाः**=बृहत् कुक्षि (बड़े पेटवाले) हैं, **ककुभाः**=अर्जुनवृक्ष की भाँति भयंकर आकृतिवाले हैं, **करुमाः**-(कम् रवन्ते रुवङ् वधे) सुख का विनाश करनेवाले, **स्रिमाः**=(स्रिवु शोषणे) रुधिर का शोषण करनेवाले हैं, **तान्**-उन कृमियों को हे **ओषधे**-गौर व पीत सर्षप **त्वम्**-तू **गन्धेन**=गन्ध के द्वारा—अग्निहोत्र की अग्नि में पड़कर फैलनेवाली गन्ध के द्वारा **विशूचीनां विनाशय**-विरुद्ध दिशाओं में भगाकर नष्ट कर दे।

भावार्थ—स्वास्थ्य के लिए सायं प्रबल हो उठनेवाले, विविध कृमियों का विनाश आवश्यक है। हव्यद्रव्य के गन्ध से इनका विनाश करना इष्ट है। हमारे घरों के पास ये कृमि न रहें।

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

'कुकुन्ध' आदि कृमियों का विनाश

ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति।
क्लीबाइव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि॥ ११॥

१. **ये**=जो **कुकुन्धाः**=(कु+कु+धा) बुरा शब्द करते हैं, **कुकूरभाः**-(कुकूलः तुषानलः तद्वद् भान्ति) कुछ थोड़ा-सा चमकनेवाले हैं, **कृत्तीः**=काटनेवाले तथा **दूर्शानि**=दंश करने के साधनों को **बिभ्रति**-धारण करते हैं, **ये**-जो **क्लीबाः इव प्रनृत्यन्तः**=नुपंसकों की भाँति नृत्य करते हुए **वने घोषं कुर्वते**=वन में शब्द करते हैं, **तान्**-उन कृमियों को **इतः**=यहाँ से **नाशयामसि**=नष्ट करते हैं।

भावार्थ—बुरा शब्द करनेवाले, कुछ कुछ चमकनेवाले, मुख से काटने व दंश का साधन रखनेवाले, वन में नृत्य के साथ घोष करनेवाले मच्छरादि को यहाँ से दूर कर दो।

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

ये सूर्यं न तितिक्षन्ते

ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः।
अरायान्बस्तवासिनो दुर्गन्धीँल्लोहितास्यान्मकंकान्नाशयामसि॥ १२॥

१. **ये**-जो कृमि **दिवः**=द्युलोक से **आतपन्तम्**-सर्वतः ताप करते हुए **अमुं सूर्यम्**-उस सूर्य को न **तितिक्षन्ते**-नहीं सहन करते, अर्थात् गर्मी से नष्ट हो जाते हैं, उन **अरायान्**-श्री के विनाशक—श्रीरहित **वस्तवासिनः**=चर्म में निवास करनेवाले—त्वचा पर चिपट जानेवाले **दुर्गन्धीन्**-दुष्ट गन्धवाले **लोहितास्यान्**=लाल-लाल मुखवाले, अर्थात् रुधिर लिप्त मुखवाले **मककान्**=कुत्सित गतिवाले कृमियों को **नाशयामसि**=विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—सूर्य की गर्मी में जो नष्ट हो जाते हैं, उन अलक्ष्मी के कारणभूत, चमड़े में चिपटनेवाले, दुर्गन्धयुक्त, रक्तमुख कृमियों को हम नष्ट करते हैं।

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिनः

य आत्मानमतिमात्रमंसं आधाय बिभ्रति।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय॥ १३॥

१. **ये**-जो कृमि **अतिमात्रम्**-बहुत ही अधिक **अंसे आधाय**-औरों को पीड़ा में स्थापित करके **आत्मानम् बिभ्रति**-अपने को धारण करते हैं, अर्थात् जिनका जीवन औरों की पीड़ा पर ही आश्रित है, उन **स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिनः** स्त्रियों के कटिप्रदेश को पीड़ित करनेवाले **रक्षांसि** रोगकृमियों को, हे **इन्द्र**-राजन्! **नाशय**-नष्ट कर राजा स्वच्छता आदि की इसप्रकार व्यवस्था कराये कि रोगकृमि उत्पन्न ही न हों।

भावार्थ—औरों को पीड़ित करने पर ही जिनका जीवन निर्भर करता है, स्त्रियों के कटिप्रदेशों को अतिशयेन व्यथित करनेवाले उन रोगकृमियों के विनाश के लिए राजा की ओर से समुचित व्यवस्था होनी आवश्यक है।

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

आपाकेस्थाः प्रहासिनः

ये पूर्वे वध्वो३ यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः।
आपाकेस्थाः प्रहासिनं स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि॥ १४॥

१. **ये**-जो कृमि **हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः** हाथ में हिंसा साधन धारण करते हुए **वध्वः पूर्वे यन्ति**-वधुओं के आगे जाते हैं, **आपाकेस्थाः**-जो पाकशालाओं में स्थिर होते हैं, **प्रहासिनः** जो अपने दंश से हँसाते से हैं, **ये** जो कृमि **स्तम्बे**-तृणादि के गुच्छों में **ज्योतिः कुर्वते**-प्रकाश करते हैं, अर्थात् झाड़ियों में चमकते हैं **तान्**-उन सबको **इतः** यहाँ से **नाशयामसि** विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—जिन कृमियों के हाथ में सींग-सा दंश है, जो पाकगृह में रहते हैं, जो चमकते हैं और स्त्रियों के पास जाकर रोग उत्पन्न करते हैं, उन रोगकृमियों को यहाँ से विनष्ट कर दो।

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा ब्राह्मणस्पतिः** ॥ छन्दः—**सप्तपदाशक्वरी** ॥

खलजाः शकधूमजाः

येषां पश्चात्प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः।
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय॥ १५॥

१. **येषाम्**-जिन कृमियों के **प्रपदानि**-पादाग्रप्रदेश **पश्चात्**-पीछे की ओर हैं, **पार्ष्णीः पुरः** ऐडियाँ आगे हैं, **मुखाः पुरः** प्रपदों के प्रतिकूल मुख आगे ही हैं, **खलजाः**-धान्य शोधन प्रदेशों में होनेवाले, **शकधूमजाः** गौ अश्व आदि के पुरीष-पिण्डों के धूम से उत्पन्न होनेवाले **उरुण्डाः** उद्गत रुण्ड (सिरोभाग)-वाले **च**-और **ये मट्मटाः**-(मट् अवसादने) जो बहुत पीड़ा देनेवाले हैं, **कुम्भमुष्काः**-कुम्भोपम मुष्क से युक्त हैं, **अयाशवः**-(अयो वायुः) वायु की भाँति शीघ्रगामी हैं, **तान्**-उन सब रोगकृमियों को, हे **ब्रह्मणस्पते**-ज्ञान के स्वामिन् प्रभो! **अस्याः प्रतिबोधेन**-इस बज (श्वेत सर्षप) ओषधि के प्रतिनियत ज्ञान से **नाशय** विनष्ट कीजिए।

भावार्थ—विकृत रूपवाले तथा अपवित्र स्थानों में उत्पन्न हो जानेवाले विविध कृमियों को हम 'बज' नामक ओषधि के सम्यक् प्रयोग से दूर करें।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

अस्त्रैणाः (सन्तु)

पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः।
अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम्॥ १६॥

१. **पर्यस्ताक्षाः**-जिनकी आँखे फिरी हुई हैं -टेढ़ी आँखवाले, **अप्रचङ्कशाः**-बिल्कुल लंगड़े-लूले **पण्डगाः**-नंपुसक लोग **अस्त्रैणाः सन्तु**=स्त्रियों से रहित हों—इन्हें विवाह का अधिकार न हो। २. हे **भेषज**=चिकित्सक राजवैद्य! **यः**=जो **इमाम्**=इस **स्वपतिं स्त्रियम्**=अपने पति के साथ होनेवाली स्त्री को **अपतिः**=किसी का पति न होता हुआ **संविवृत्सति**-प्राप्त करने की इच्छा करता है, उस पुरुष को **अवपादय** राष्ट्र से दूर कर। जो विवाहित न होकर अन्य स्त्रियों में वर्तना चाहते हैं, उन्हें राष्ट्र से दूर करना ही ठीक है।

भावार्थ—'पर्यस्ताक्ष, अप्रचङ्कश, पण्डग' लोग विवाह के अयोग्य हैं। जो गृहस्थ न बनकर पर -दाराओं में प्रवृत्त होते हैं, उन्हें राष्ट्र से निष्कासित करना ही ठीक है।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**सप्तपदाजगती**॥

पदा प्रविध्य

उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम्। उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम्।
पदा प्र विध्य पाष्ण्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना॥ १७॥

१. **उद्धर्षिणम्**=अत्यधिक कामी—मिथ्या व्यवहारवाले (हृषु अलीके), **मुनिकेशम्**=मुनियों के समान जटाओं को बढ़ाए हुए—ढोंगी, **जम्भयन्तम्**=हिंसन करते हुए, **मरीमृषम्**=बार-बार गुह्याङ्गों को स्पर्श करनेवाले **उपेषन्तम्**=(उप+ईष) अधिक आने-जानेवाले, **उदुम्बलम्**=अत्यधिक भोगी या मारनेवाले **तुण्डेलम्**=बन्दर के समान आगे बढ़े हुए मुखवाले **उत**=और **शालुडम्**-घमण्डी पुरुष को हे स्त्रि! तू इसप्रकार **पदा प्र विध्य**=पाँवों से ठोकर मार, **इव**=जैसेकि **स्पन्दना गौः**=कूदनेवाली गौ **पाष्ण्या**=ऐड़ी से **स्थालीम्**=दूध दुहे जानेवाली हाँडी को आहत करती है।

भावार्थ—यदि कोई पुरुष कामासक्ति के कारण ढोंगी-सा बना हुआ अपने पुरुषत्व के घमण्ड में स्त्री के साथ अनुचित सम्पर्क करना चाहता है तो स्त्री उसे पादाहत करके उसकी प्रार्थना को ठुकरा दे।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पिङ्गः

यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते।
पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम्॥ १८॥

१. **यः**-जो रोगकृमि **ते** तेरे **गर्भम्**-गर्भ को—गर्भस्थ सन्तान को **प्रतिमृशात्**=पीड़ित करे, **वा**=अथवा **जातम्**=उत्पन्न हुए-हुए **ते**=तेरे पुत्र को **मारयाति**=मार देता है, **तम्**=उसे यह **उग्रधन्वा**=उद्गूर्ण गतिवाला अथवा भंयकर धनुष से युक्त **पिङ्गः**=गौर सर्षप **हृदयाविधम् कृणोतु**-विद्ध (पीड़ित हृदयवाला) करे। यह सर्षप औषध देवता ही है, इसी से इसे यहाँ 'उग्रधन्वा' कहा है। यह उन गर्भविघातक कृमियों को हृदय में विद्ध करके नष्ट कर डालता है।

भावार्थ—योग्य वैद्य गौर सर्षप के प्रयोग से उन कृमियों को नष्ट करें, जो गर्भ में दोष उत्पन्न कर देते हैं।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

स्त्रीभागान् गन्धर्वान्

ये अम्नो जातान्मारयन्ति सूतिका अनुशेरते।
स्त्रीभागान्पिङ्गो गन्धर्वान्वातो अभ्रमिवाजतु॥ १९॥

१. **ये** जो कृमि **अम्नः जातान्** अर्धोत्पन्न गर्भों को **मारयन्ति**-नष्ट कर डालते हैं(अम्नः अबोध अमन्)। **सूतिकाः अनुशेरते**-अभिनवप्रसवा स्त्रियों के साथ शयन (निवास) करते हैं, उन **गन्धर्वान्** (गन्ध अर्दनम्, अर्व हिंसायाम्) पीड़ित व हिंसन करनेवाले **स्त्रीभागान्** (स्त्रीयः भागो येषाम्) स्त्रियों को पकड़नेवाले कृमियों को **पिङ्गः**-गौर सर्षप इसप्रकार **अजतु**-दूर फेंक दे, **इव**-जैसेकि **वातः अभ्रम्**-वायु बादल को सुदूर फेंक देती है।

भावार्थ—गर्भिणियों को पीड़ित करनेवाले व अर्धविकसित बालकों को नष्ट करनेवाले कृमियों को गौर सर्षप विनष्ट करे।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

नीविभार्यौ (भेषजौ)

परिसृष्टं धारयतु यद्धितं मावं पादि तत्।
गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥ २०॥

१. स्त्री **परिसृष्टं धारयतु** पति द्वारा प्रदत्त वीर्य को अपने अन्दर धारण करे, **यत् हितम्** जो वीर्य गर्भस्थिति के लिए धारण किया गया है, **तत् मा अवपादि**-वह नष्ट न हो जाए। हे स्त्रि! **ते गर्भम्**-तेरे इस गर्भ को—गर्भस्थ बालक को **उग्रौ भेषजौ**=उद्‌गूर्ण बलवाले ये ओषधरूप श्वेत व पीत सर्षप **रक्षताम्** रक्षित करें। ये दोषों को दूर करनेवाले सर्षप **नीविभार्यौ** तेरे मूलधनरूप इस आहित वीर्य को सुन्दरता से भरण करनेवाले हैं।

भावार्थ—श्वेत व पीत सर्षप प्रबल भेषज हैं। इनका प्रयोग पति-प्रदत्त वीर्य का स्त्रीगर्भ में धारण करने में सहायक होता है और धारित गर्भ को नष्ट नहीं होने देता।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रजायै पत्ये

पवीनसात्तङ्गल्वा३च्छायकादुत नग्नकात्।
प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः॥ २१॥

१. **पवीनसात्** वज्रतुल्य नासिकावाले **तङ्गल्वात्**-बड़े गालवाले, **छायकात्**-मुख से काटनेवाले (छो छेदने) **उत**-और **नग्नकात्**-नंगे—बालों से रहित, **किमीदिनः**-हर समय भूखे (किम् इदानीं अदानि) इस रोगकृमि से **त्वा**-तुझे **प्रजायै**-उत्तम सन्तान की प्राप्ति के लिए तथा **पत्ये**-पति की अनुकूलता के लिए **पिङ्गः**-पिंग वर्णवाला सर्षप **परिपातु**-रक्षित करे।

भावार्थ—पिंग वर्णवाले सर्षप के प्रयोग से रोगकृमियों के संहार के द्वारा गर्भिणी इसप्रकार स्वस्थ हो कि सन्तान भी उत्तम हो और पति की अनुकूलता भी बनी रहे। अस्वस्थ पत्नी से पति की परेशानी बढ़ती है।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

द्व्यास्यात् चतुरक्षात्

द्व्या स्याच्चतुरक्षात्पञ्चपादादनङ्गुरेः।
वृन्तादभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात्॥ २२॥

१. **द्व्यास्यात्**-दो मुखवाले, **चतुरक्षात्**-चार आँखोंवाले, **पञ्चपादात्**-पाँच पाँववाले, **अनङ्गुरेः**-अंगुलियों से रहित **वृन्तात् अभिप्रसर्पतः**-लता-पुञ्ज से निकलकर हमारी ओर आते हुए अथवा (वृन्तवद् वृन्तं शिरः, पादाग्रं वा) सिर से आगे बढ़े हुए (अवाग् भूयाभिगच्छतः) **वरीवृतात्**-सब अङ्गों को व्याप्त करनेवाले इस कृमि से, हे ओषधे! तू **परिपाहि**-हमारा रक्षण कर।

भावार्थ—कई कृमि बड़े विचित्र-से होते हैं। उनके दो मुख, चार आँखे व पाँच पाँव होते हैं, इनकी अंगुली नहीं दिखती। सिर के बल आगे बढ़े हुए इन कृमियों से यह सर्षप हमारा रक्षण करे।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मांसाहारी कृमि

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः।
गर्भान्खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि॥ २३॥

१. **ये**=जो **आमं मांसं अदन्ति**=कच्चा मांस खाते हैं, **च**=और **ये पौरुषेयम् क्रविः**-पुरुष के मांस को विशेषरूप से खानेवाले हैं, जो **केशवाः**-बड़े बड़े बालोंवाले **गर्भान् खादन्ति**=गर्भस्थ बालकों को ही खा जाते हैं, **तान्**-उन सब कृमियों को **इतः नाशयामसि**=यहाँ से नष्ट करते हैं।

भावार्थ—कच्चा मांस खा जानेवाले, परिपक्व पौरुष मांस को नष्ट कर डालनेवाले, गर्भस्थ बालकों को खा जानेवाले सब रोगकृमियों को नष्ट करते हैं।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

बजः च पिङ्गः च

ये सूर्यात्परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि।
बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम्॥ २४॥

१. **ये**=जो कृमि **सूर्यात् परिसर्पन्ति**=सूर्य से—सूर्य प्रकाश से इसप्रकार दूर भागते हैं **इव**=जैसेकि **स्नुषा श्वशुरात् अधि**-पुत्रवधू श्वशुर से दूर हटती है। **तेषाम्**-उन सब कृमियों के **हृदये**=हृदय में **बजः च पिङ्गः च**=यह गौर सर्षप और पिंगल वर्ण का सर्षप **अधिनि-विध्यताम्**=अतिशयेन वेध करनेवाले हों।

भावार्थ—बज और पिंग सर्षप अन्धकार में पनपनेवाले कृमियों को नष्ट करें।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्

पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्।
आण्डादो गर्भान्मा दभन्बाधस्वेतः किमीदिनः॥ २५॥

१. हे **पिङ्ग**-पीतवर्ण सर्षप! **जायमानं रक्ष**=उत्पद्यमान शिशु का तू रक्षण कर। **पुमांसं स्त्रियं मा क्रन्**-ये कृमि पुरुष व स्त्री को हिंसित न करें, अथवा जायमान पुंगर्भ को ये स्त्रीगर्भ न कर दें। (केचित् भूतविशेषः पुंगर्भं स्त्रीगर्भं कुर्वन्ति) कई कृमि पुंगर्भ को स्त्रीगर्भ में परिवर्तित कर देते हैं। २. **आण्डादः**-अण्डप्रदेश को खा जानेवाले ये कृमि **गर्भान् मा दभन्**=गर्भों को हिंसित न करें। हे पिङ्ग! इन **किमीदिनः** (किम् इदम् किम् इदम् इति चरतः) अब क्या खाएँ, अब क्या खाएँ—इसप्रकार विचरते हुए इन कृमियों को **इतः बाधस्व**=यहाँ से—गर्भिणी के सान्निध्य से दूर कर।

भावार्थ—उन कृमियों को गर्भिणी की समीपता से दूर किया जाए जो (क) जायमान शिशुओं को नष्ट कर देते हैं, (ख) पुंगर्भ को स्त्रीगर्भ कर देते हैं, (ग) अण्डकोश सम्बन्धी प्रदेशों को खा-सा जाते हैं।

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, मातृनामा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विचित्र माला

अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद्रोदमघमावयम्।
वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत्॥ २६ ॥

१. **अप्रजास्त्वम्**-सन्तान का न होना, **मार्तवत्सम्**-मृत सन्तान का होना **आत्**-और **रोदम्** उत्पद्यमान दुःख के कारण सर्वदा हृदय में रोते रहना, **अघम्**-पाप **आवयम्**-गर्भ का न ठहरना (non-conception)—ये जितनी भी बाते हैं, **तत्**-उन सबको, उसी प्रकार माला-सी बनाकर **अप्रिये प्रतिमुञ्च**-समाज के साथ अप्रीतिवाले किसी पुरुष में डाल, **इव**-जैसेकि **वृक्षात्**-वृक्ष से फूलों को लेकर **स्रजं कृत्वा**-माला सी बनाकर किसी प्रिय मित्र को पहना देते हैं।

भावार्थ—उचित औषध विनियोग से स्त्री के 'अप्रजास्त्व, मार्तवत्स, रोद, अघ, आवय' आदि दोषों को दूर किया जाए।

गृहस्थ को इन सब कष्टों से बचने के लिए स्थिरवृत्तिवाला बनना आवश्यक है। यही 'अथर्वा' है। रोगों के दूरीकरण के लिए उपादेय ओषधियों का ज्ञान प्राप्त करता हुआ यह 'अथर्वा' अगले सूक्त का ऋषि है तो 'ओषधयः' देवता हैं।

७. [सप्तमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ओषधयः

या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि॥ १ ॥

१. **याः** जो **बभ्रवः**-भरण करनेवाली—मांस को बढ़ानेवाली **याः च**-और जो **शुक्राः**-वीर्यवर्धक **रोहिणीः**-घाव इत्यादि को भरनेवाली, **उतः**-और **पृश्नयः**-रस का पोषण करनेवाली, **असिक्नीः**-(षिञ् बन्धने) अंगों के बन्धन—जुड़जाने को खोलनेवाली तथा **कृष्णाः**-आवश्यक विलेखन करनेवाली—मोटेपन को दूर करनेवाली **ओषधीः**-ओषधियाँ हैं, **सर्वाः** उन सबका **अच्छावदामसि**=सम्यक् उपदेश करते हैं।

भावार्थ—प्रभु से उत्पादित व उपदिष्ट सब ओषधियों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करते हुए हम स्वस्थ व दीर्घजीवनवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

देवेषितात् यक्ष्मात्

त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद्देवेषितादधि।
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव॥ २ ॥

१. **यासाम्** जिन **वीरुधाम्**-बेलों का—ओषधियों का **द्यौः पिता**=द्युलोकस्थ सूर्य ही पिता है—सूर्य ही इनमें प्राणदायी तत्त्वों की स्थापना करता है, वही इनके परिपाक का कारण बनता है। **पृथिवी माता**-यह भूमि ही इन वीरुधों की माता है, इसी से इन्हें रस व पुष्टि प्राप्त होती

है। **समुद्रः मूलं बभूव**=समुद्र इनका मूल है, समुद्र से ही वाष्पीभूत हुआ-हुआ जल मेघरूप में परिणत होकर इन्हें सींचता है। ये वीरुध **इमं पुरुषम्**=इस पुरुष को **देवेषितात्**=(दिवु क्रीडायाम्) विषयक्रीड़ा द्वारा प्राप्त हुए हुए **यक्ष्मात्**-राजयक्ष्मा रोग से **अधित्रायन्ताम्**=बचाएँ।

भावार्थ—विषयों में अतिप्रसक्ति से रोग उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। इन रोगों को उचित औषध-प्रयोग से दूर किया जाए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आपः=दिव्या ओषधयः

आपो अग्रं दिव्या ओषधयः। तास्ते यक्ष्ममेनस्यं मङ्गादङ्गादनीनशन्॥ ३॥

१. **अग्रम्**-सर्वप्रथम **आपः**=ये जल, **दिव्याः ओषधयः**-दिव्य ओषधियाँ हैं। जल सर्वोत्तम औषध है। **ताः**-वे जल **ते**=तेरे **एनस्यम्**-पापजनित—विषयभोग से उत्पन्न **यक्ष्मम्**-रोग को **अङ्गात् अङ्गात्**-एक एक अङ्ग से **अनीनशन्**-अदृष्ट कर दें। २. जलों का समुचित प्रयोग सर्वदोष विनाशक है। जलों में सब औषध विद्यमान हैं—'**अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा**'। जल शब्द ही 'जल घातने' धातु से बनकर स्पष्ट कर रहा है कि यह सब रोगों का घात करता है।

भावार्थ—जल सर्वोत्तम दिव्य औषध हैं। इनका समुचित प्रयोग सर्वरोगविनाशक है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः**॥ छन्दः—**पञ्चपदापरानुष्टुबतिजगती**॥

उग्राः पुरुषजीवनीः

प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि।
अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः॥ ४॥

१. प्रभु कहते है कि हे पुरुष! मैं तेरे लिए उन **ओषधीः**=ओषधियों को **आवदामि**-उपदिष्ट करता हूँ जो **प्रस्तृणतीः**-भूमि को आच्छादित करनेवाली हैं—खूब फैलनेवाली हैं, **स्तम्बिनीः**-तृणों के गुच्छोंवाली हैं, **एकशुङ्गा**=एक कोंपलवाली हैं (शुङ्ग the awn of a corn) तथा **प्रतन्वतीः**=खूब ही फैलनेवाली हैं। २. मैं **ते**=तेरे लिए उन **वीरुधः**-लताओं को **ह्वयामि**-पुकारता हूँ **याः**=जोकि **अंशुमतीः**-बहुत तन्तुओंवाली हैं। **काण्डिनीः**=काण्डों या पोरुओंवाली हैं, **विशाखाः**=शाखाओं से रहित हैं। ये ओषधियाँ **वैश्वदेवीः**-सब दिव्य गुणोंवाली व सब रोगों को जीतनेवाली हैं, **उग्राः**-प्रबल प्रभाववाली हैं, **पुरुषजीवनीः**=पुरुष को जीवन प्रदान करनेवाली हैं—इनके प्रयोग से पुरुष पुनः जीवित हो उठता है।

भावार्थ—प्रभु ने विविध ओषधियों को जन्म दिया है। उनका समुचित ज्ञान व प्रयोग करते हुए हम नीरोग व दीर्घजीवी बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

सहः, वीर्यं, बलम्

यद्वः सहः सहमाना वीर्यं यच्च वो बलम्।
तेनेममस्माद्यक्ष्मात्पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम्॥ ५॥

१. हे **सहमानाः**=रोगों का पराभव करनेवाली ओषधियो! **यत् वः**-जो तुम्हारा **सहः**-रोगों के पराभव का सामर्थ्य है, जो तुम्हारी **वीर्यम्**=रोगों को कम्पित करके दूर करने की शक्ति है (वि+ईर्), **यत् च**=और जो **वः बलम्**-तुम्हारा बल है, **तेन**-उस 'सह,वीर्य व बल' से **इमं पुरुषम्**-इस पुरुष को **अस्मात् यक्ष्मात् मुञ्चत**-इस रोग से मुक्त करो। हे **ओषधीः**-तापनाशक

ओषधियो! मैं **अथो**-अब तुम्हारे बल पर ही **भेषजं कृणोमि**-इस रुग्ण पुरुष की चिकित्सा करता हूँ।

भावार्थ- ओषधियों में रोगों को कुचलने की शक्ति है (सहः), ये रोग को कम्पित करके दूर कर देती हैं (वीर्यम्), ये पुरुष को पुनः शक्ति प्रदान करती हैं (बलम्)।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधमः**॥ छन्दः—**विराड्गर्भाभुरिक्पथ्यापङ्क्तिः**॥

जीवन्ती, अरुन्धती, पुष्पा (मधुमती)

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये॥ ६॥

१. **अहम्**-मैं **अस्मै अरिष्टतातये**-इसी रोगी पुरुष को स्वास्थ्य लाभ कराने के लिए **इह** यहाँ **जीवलाम्** जीवनप्रद **न-घा-रिषाम्**-निश्चय से हानि नहीं पहुँचानेवाली **जीवन्तीम् ओषधीम्**-जीवनी नामक ओषधि को **हुवे** पुकारता हूँ। २. **उन्नयन्तीम्**-बिस्तर पर पड़े रोगी को फिर से उठा देनेवाली **अरुन्धतीम्** अरुन्धती नामक ओषधि को पुकारता हूँ तथा **मधुमतीम्** मधुर रस से परिपूर्ण इस **पुष्पाम्**-पुष्पा नामक ओषधि को पुकारता हूँ।

भावार्थ—'जीवन्ती' ओषधि इस रोगी को पुनः प्राणशक्ति प्राप्त कराती है, 'अरुन्धती' उसके सब रोगों का निरोध करती हुई इसे ऊपर उठा देती है और 'पुष्पा' इसके जीवन में माधुर्य का संचार करती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मेदिनीः

इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि॥ ७॥

प्रचेतसः मम वचसः-प्रकृष्ट ज्ञानदेनेवाले मुझ वैद्य के वचन से **मेदिनीः इह आयन्तु**-पुष्टिकारक ओषधियाँ यहाँ प्राप्त हों, **यथा** जिससे **इमं पुरुषम्**-इस रुग्ण पुरुष को **दुरितात्** पाप जन्य भोगरूप रोग से **अधि पारयामसि**-पार कर दें।

भावार्थ—ज्ञानी वैद्य पौष्टिक ओषधियों के प्रयोग से इस रुग्ण के कष्ट का निवारण करे। वैद्य का प्रकृष्ट ज्ञानवाला होना आवश्यक है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अग्नेः घासः,अपां गर्भः

अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः।
ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः॥ ८॥

१. **अग्नेः घासः**-जो अग्नि का भोजन हैं, अर्थात् जिनके द्वारा वैश्वानर (जाठर) अग्नि दीप्त होती है, जो **अपां गर्भः** (आपः रेतो भूत्वा०) रेतःकणों को गर्भ में धारण करनेवाली हैं, **याः**-जो **पुनर्णवाः रोहन्ति**-फिर-फिर नई होकर उग आती हैं—बढ़ती हैं, **ध्रुवाः**-जो स्थिर प्रभावशाली हैं, वे **सहस्रनाम्नीः**-हज़ारों नामोंवाली **आभृताः**-समन्तात् पैदा हुई वनस्पति व लताएँ **भेषजीः सन्तु**-रोगों की औषध बनें।

भावार्थ—ये वनस्पतियाँ व लताएँ समन्तात् आभृत हुई-हुई हमारी जाठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाली हों, वीर्यशक्ति को बढ़ानेवाली हों। शरीर पर स्थिर प्रभाववाली हों तथा रोगों की औषध बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः** ॥ छन्दः—**द्विपदाऽऽर्चीभुरिगनुष्टुप्** ॥

अवकोल्बाः, उदकात्मानः

अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः। व्यृ[षन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्य]ः ॥ ९ ॥

अवका-उल्बाः-जल के शैवाल के भीतर उत्पन्न होनेवाली, **उदकात्मानः**-जलमय देहवाली **तीक्ष्णशृङ्ग्यः**-तीखे सींग व काँटोंवाली **ओषधयः**=ओषधियाँ **दुरितम्**=अशुभ आचरण से उत्पन्न दुःखदायी रोग को **विऋषन्तु**=विशेषरूप से दूर करें।

भावार्थ—जल के शैवाल के भीतर उत्पन्न होनेवाली तीक्ष्णशृंगी उदकात्मा ओषधियाँ पापरोग को दूर करनेवाली हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

विषदूषणीः बलासनाशनी

उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः ॥ १० ॥

१. **ताः ओषधीः**=वे ओषधियाँ **इह आयन्तु**=यहाँ प्राप्त हों, **याः**=जोकि **उन्मुञ्चतीः**=रोगों से मुक्त करनेवाली हैं। **विवरुणा**=विशेषरूप से वरणीय हैं, क्योंकि वे रोगों का निवारण करनेवाली हैं, **उग्राः**-जो अति प्रबल हैं, **विषदूषणीः**-विष को भी दूषित करनेवाली हैं। २. **अथो**=और अब **याः**=जो ओषधियाँ **बलासनाशनीः**-कफ़ का नाश करनेवाली हैं **च**=और **कृत्या-दूषणीः**=छेदन-भेदन को दूषित करनेवाली हैं—छेदन-भेदन-जनित विकारों को दूर करनेवाली हैं।

भावार्थ—रोग से मुक्त करनेवाली, रोग का निवारण (prevention) करनेवाली, प्रभाववाली, विषदूषणी, कफ़-विकार की निवारक, छेदनजनित विकार को दूर करनेवाली—ये सब ओषधियाँ यहाँ प्राप्त हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सहीयसीः (अपक्रीताः) वीरुधः

अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः।
त्रायन्तामस्मिन्ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ॥ ११ ॥

अपक्रीताः-दूर देश से द्रव्य-विनिमय द्वारा प्राप्त की गई **सहीयसीः**-रोगों का मर्षण करनेवाली **वीरुधः**-लताएँ **याः अभिष्टुताः**=जिनकी सब प्रकार से प्रशंसा सुनाई देती है, **वे अस्मिन् ग्रामे**-इस ग्राम में **गां अश्वं पुरुषं पशुम्**-गौ, घोड़े, पुरुष व पशु को **त्रायन्ताम्**=रोग से बचाएँ।

भावार्थ—कई वीरुध दूर देश से द्रव्य द्वारा प्राप्त की जाती हैं। ये रोगों को कुचलनेवाली औषध हमारे गौ, घोड़े, मनुष्य व पशुओं का रोगों से रक्षण करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाविराडतिशक्वरी** ॥

मधोः संभक्ता

मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव।
मधुमत्पर्णं मधुमत्पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य
भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम् ॥ १२ ॥

१. **आसां वीरुधाम्**=इन ओषधिभूत वीरुधों (बेलों) का **मूलं मधुमत्**=मूल माधुर्यवाला

है, **अग्रं मधुमत्**-अग्रभाग माधुर्यवाला है, **मध्यं मधुवत् बभूव** मध्यभाग भी माधुर्यवाला है। **आसाम्** इनका **पर्णम्** पत्ता भी **मधुमत्** माधुर्यवाला है, **पुष्पं मधुमत्** फूल भी माधुर्य को लिये हुए हैं। ये वीरुध तो **मधोः संभक्ताः** मधु से संभक्त हैं—सम्यक् सेवित हुई हैं। २. इन वीरुधों में मधु का अंश सर्वत्र व्यापक है, अतः ये अमृतमय ओषधियाँ **अमृतस्य भक्षः** अमृतमय भोजन हैं। अमृत के बने भोजन के समान दीर्घ आयुप्रद हैं। ये ओषधियाँ **गो-पुरोगवम्**-गाय जिसमें अग्रगामी हैं—सबसे प्रथम स्थान में रक्खी हैं, ऐसे **घृतं अन्नं दुह्रताम्**-घृत और अन्न का हमारे लिए दोहन करें। इन ओषधियों का सेवन करनेवाली गौओं से हमें दूध और घी प्राप्त हो तथा ये ओषधियाँ तथा वनस्पतियाँ हमारा उत्तम अन्न बने।

भावार्थ—प्रभु से उत्पादित ओषधियों का मूल, मध्य व अग्रभाग, इनके पत्ते व फूल सब मधु के समान मधुर (गुणकारी) रस से परिपूर्ण हैं। ये मधुसिक्त ओषधियाँ हमें गोदुग्ध के साथ घृत व अन्न प्राप्त करानेवाली हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सहस्रपर्ण्यः

यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः
ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः॥ १३॥

यावतीः कियतीः च जीतनी कितनी भी **इमाः** ये **पृथिव्यां अधि**-इस पृथिवी पर **ओषधीः**-ओषधियाँ हैं, **ताः**-वे **सहस्रपर्ण्यः**-हज़ारों प्रकार से पालन व पूरण करनेवाली ओषधियाँ **मा**-मुझे **मृत्योः** मृत्यु से—रोग से तथा **अंहसः**-कष्टों से **मुञ्चन्तु** मुक्त करें।

भावार्थ—पृथिवी से उत्पन्न सब ओषधियाँ हज़ारों प्रकार से पालन व पूरण करती हैं। वे ओषधियाँ हमें रोगों व कष्टों से मुक्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः**॥ छन्दः—**उपरिष्टादनिचृद्बृहती**॥

वैयाघ्रो मणिः

वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः।
अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्तम्॥ १४॥

१. **वीरुधाम्** लता रूप ओषधियों से बनाई गई **वैयाघ्र**-विशिष्ट प्रकार की गन्ध देनेवाली **मणिः** रोग स्तम्भन गुटिका **त्रायमानः** रोगों से बचानेवाली और **अभिशस्तिपाः**-निन्दनीय अभिशाप आदि से भी रक्षा करनेवाली होती है। २. यह वैयाघ्र मणि **सर्वाः अमीवाः**-सब प्रकार के रोगों को, **रक्षांसि** सब रोगकृमियों को **अस्मत् अधि** हमसे **दूरम् अपहन्तु** सुदूर विनष्ट करनेवाली हो।

भावार्थ—ओषधियों से निर्मित विविध गन्धोंवाली गोलियाँ सब रोगकृमियों व रोगों को हमसे दूर भगाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः।
गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः॥ १५॥

१. **इव** जिस प्रकार पशु **सिंहस्य स्तनथोः संविजन्ते**-शेर के गर्जन से भयभीत होकर भाग उठते हैं और **इव**-जिस प्रकार ये पशु **अग्नेः विजन्ते**-अग्नि से व्याकुल हो उठते हैं। २. इन **वीरुद्भिः**-ओषधिभूत बेलों से **अतिनुत्तः**-अतिशयेन परे धकेला हुआ यह **गवां पुरुषाणां**

यक्ष्मः=गौओं (पशुओं) व पुरुषों का रोग **नाव्याः स्त्रोत्याः एतु**-नावों से तरने योग्य नदियों से भी परे चला जाए—निन्यानवे नदियों के पार चला जाए।

भावार्थ—ओषधिनुत्त रोग 'सात समुन्द्र पार' पहुँच जाए। ये रोग हमारे जीवन के निन्यानवे वर्षों से परे रहें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मुमुचानाः भूमिं सन्तन्वतीः

मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि।
भूमिं सन्तन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः॥ १६॥

१. **यासां राजा वनस्पतिः**-जिन ओषधियों का राजा 'सोम' वनस्पति है। यह सोम ज्ञान की रश्मियों का रक्षक हैं। सोमलता शरीर में 'सोम' शक्ति को स्थापित करती हुई ज्ञानाग्नि को दीप्त करती हैं। हे 'सोम' रूप राजावाली **ओषधयः**=ओषधियो! आप **अग्नेः वैश्वानरात् अधि**-शरीरस्थ वैश्वानर अग्नि के द्वारा—जाठराग्नि के सम्यक् दीपन द्वारा **मुमुचानाः**—हमें रोगों से मुक्त करती हुई और **भूमिम्**=इस शरीररूप पृथिवी को **सन्तन्वतीः**-(तनु विस्तारे) विस्तृत शक्तिवाला करती हुई **इतः**=हमें प्राप्त होओ।

भावार्थ—पृथिवी में उत्पन्न ये ओषधियाँ जाठराग्नि के ठीक दीपन द्वारा हमें रोगमुक्त करती हैं और हमारी शक्तियों का विस्तार करती हैं। इन ओषधियों का राजा 'सोम' है। इस सोमलता का रस शरीर में सोम को स्थापित करता हुआ बुद्धि को दीप्त करता है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

आङ्गिरसीः पयस्वतीः

या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च।
ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे॥ १७॥

१. **याः आङ्गिरसीः**-जो अंगों में रस का वर्धन करनेवाली **ओषधीः**=ओषधियाँ **पर्वतेषु समेषु च**=पर्वतों में व समस्थलों में **रोहन्ती**=उगती हैं, **ताः**=वे **पयस्वतीः**=आप्यायन-(वर्धन)-कारी रसवाली **शिवाः**-कल्याणकर **ओषधीः**=ओषधियाँ **नः**-हमारे **हृदे**-हृदय के लिए **शं सन्तु**=शान्तिकर हों।

भावार्थ—पर्वतों व मैदानों में प्रादुर्भूत होनेवाली आङ्गिरसी (अंगों में रस का संचार करनेवाली) ओषधियाँ हमारा वर्धन करती हुई हमारे हृदय के लिए शान्तिकर हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

औषध आनन्त्य

याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा।
अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च संभृतम्॥ १८॥
सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि॥ १९॥

१. **अहम्**-मैं **याः च वीरुधः वेद**=जिन लताओं को निश्चय से जानता हूँ, **याः च** और जिनको **चक्षुषा पश्यामि**=आँख से देखता हूँ, **अज्ञाताः च याः जानीमः**-और आज तक अज्ञात जिन ओषधियों को हम अब जानने लगे हैं, **च**=और **यासु**-जिनमें **संभृतम्**=सम्यक् भरणशक्ति को **विद्म**-हम जानते हैं, २. वे **सर्वाः**=सब **समग्राः**=सम्पूर्ण 'मूल, मध्य व अग्र' भाग समेत

ओषधी:-ओषधियाँ **मम वचस:** मेरे वचन से **बोधन्तु**=यह समझ लें **यथा**-जिससे **इमं पुरुषम्** इस रोग पीड़ित पुरुष को **दुरितात् अधि पारयामसि** दु:खप्रद रोग से—रोगजनित कष्ट से पार लगा दें। एक वैद्य ओषधियों को सम्बोधन करता हुआ कहता है कि 'इस पुरुष को अवश्य नीरोग करना ही है'।

भावार्थ—कुछ औषध हमें ज्ञात हैं, बहुत से अज्ञात हैं। कई अज्ञात औषधों को समय प्रवाह में हम जान पाते हैं। इन सब औषधों के सम्यक् प्रयोग से रुग्ण पुरुष को रोग-कष्ट से मुक्त किया जाए।

ऋषि:—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधय:**॥ छन्द:—**अनुष्टुप्**॥

व्रीहि: यव: (च)

अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजाऽमृतं हविः।
व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ॥ २०॥

१. **अश्वत्थ:**-पीपल, **दर्भ:**-कुशा घास, **वीरुधां राजा सोम:** वीरुधों (बेलों) का राजा 'सोम'—ये तीनों **अमृतं हवि:**=अमृत हवि हैं-अमृत भोजन हैं (हु अदने)। इनका प्रयोग मनुष्य को मृत्यु (रोग) से बचाता है। २. **व्रीहि:**-चावल **यव: च**=और जौ ये दोनों तो **भेषजौ**-औषध ही हैं, **दिव: पुत्रौ**-(दिवु मदे) सब प्रकार के उन्माद से हमारा त्राण करनेवाले (पुनाति त्रायते) तथा **अमर्त्यौ**-रोगों के कारण हमें असमय में न मरने देनेवाले हैं।

भावार्थ—'अश्वत्थ, दर्भ, सोम, व्रीहि और यव' ये हमें नीरोग बनाकर दीर्घजीवन देनेवाले हैं।

ऋषि:—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधय:**॥ छन्द:—**अनुष्टुप्**॥

पृश्निमातर: (ओषधी:)

उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः।
यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसाऽवति॥ २१॥

१. हे **पृश्निमातर:**=(पृश्नि—संस्प्रष्टा रसान्—नि०) रसों को अपने अन्दर ले-लेने में समर्थ पृथिवी माता से उत्पन्न **ओषधी:** ओषधियो! **यदा** जब **पर्जन्य:**-मेघ **स्तनयति**=गरजता है, **अभिक्रन्दति**-खूब ही ध्वनि करता है तब तुम **उज्जिहीध्वे**-ऊपर उठती हो—प्रसन्न होती हो। उस समय यह मेघ **व:**=तुम्हें **रेतसा** उदक से—जल से **अवति**=प्रीणित करता है। २. मेघ का गर्जन मानो भूमि में प्रसुप्त ओषधियों को ललकारता है, तब वे ओषधियाँ भी अपना सिर ऊपर उठाती हैं। यह पर्जन्य उन-उन ओषधियों को वृष्टि जल से प्रीणित करता है। पृथिवी इन ओषधियों की माता है तो मेघ इनका पितृ-स्थानीय होता है।

भावार्थ—भूमि में वृष्टि जल में उत्पन्न हुई ओषधियाँ वस्तुत: ओषधियाँ हैं—ये हमारे शरीर में उत्पन्न दोषों का दहन करनेवाली हैं।

ऋषि:—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधय:**॥ छन्द:—**अनुष्टुप्**॥

शतहायन:

तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि।
अथो कृणोमि भेषजं यथाऽसच्छतहायनः॥ २२॥

१. **तस्य अमृतस्य**-गतमन्त्र में वर्णित उस मेघ के अमृत (जल) के—उस जल से उत्पन्न **इमं बलम्** (बल shoot, sprout) इस अंकुरभूत औषध को **पुरुषं पाययामसि**-पुरुष को पिलाते

हैं। **अथो**-और इसप्रकार **भेषजं कृणोमि**=इसके रोगों की प्रतिक्रिया (चिकित्सा) करते हैं। **यथा** जिससे कि यह पुरुष नीरोग रहता हुआ **शतहायनः असत्**=सौ वर्ष तक जीनेवाला हो।

भावार्थ—मेघजल से उत्पन्न औषध इस पुरुष को नीरोग व शतवर्ष के दीर्घजीवनवाला बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वराहः, नकुलः, सर्पाः, गन्धर्वाः

वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम्।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे॥ २३॥

१. **वराहः**=सूकर (वरं वरं आहन्ति) **वीरुधं वेद**=रोगहारी वरणीय लताओं को जानता है। **नकुलः**-नेवला **भेषजं वेद**=रोग व विष दूर करनेवाली ओषधि को जानता है। **सर्पाः**-सर्प और **गन्धर्वाः** गन्ध से अपने खाद्य पदार्थ को प्राप्त करनेवाले प्राणी **याः विदुः**=जिन औषधभूत वीरुधों को जानते हैं, **ताः**=उन्हें **अस्मै**=इस रुग्ण पुरुष की **अवसे**=प्राणरक्षा के लिए **हुवे** पुकारता हूँ।

भावार्थ—'वराह, नकुल, सर्प व गन्धर्व' जिन मूल कन्दों को खोदकर भूपृष्ठ पर लाते हैं, वे अद्भुत औषध का कार्य करते हैं। रुग्ण पुरुष की प्राणरक्षा में ये बड़े सहायक होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः**॥ छन्दः—**षट्पदाजगती**॥

सुपर्णाः मृगाः

याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः।
वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे॥ २४॥

१. **याः**-जिन **आङ्गिरसीः**-अंगों में रस का संचार करनेवाली ओषधियों को **सुपर्णाः (विदुः)**=गरुड़ जानते हैं, **याः दिव्याः**=जिन दिव्य गुणोंवाली ओषधियों को **रघटः विदुः**-अति वेग से उड़नेवाले पक्षी जानते हैं (रघु अटति)। **याः**=जिन औषधों को **वयांसि**=कौवे **हंसाः**-और हंस **विदुः**=जानते हैं, **याः च**=और जिन्हें **सर्वे पतत्रिणः**=पंखोंवाले सब प्राणी जानते हैं, **याः ओषधीः**-जिन ओषधियों को **मृगाः विदुः**-आरण्य हरिण आदि पशु जानते हैं, **ताः**-उन ओषधियों को **अस्मै**=इस पुरुष के लिए **अवसे हुवे**-रोगों से रक्षण के लिए पुकारते हैं।

भावार्थ—प्रभु ने पशु-पक्षियों में वह स्वाभाविक चेतना रक्खी है, जिससे वे अद्भुत ओषधियों को उपलब्ध कर पाते हैं। हम उन ओषधियों के समुचित प्रयोग से इस रुग्ण पुरुष को नीरोग बनानेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

गावः अजा अवयः

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः।
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः॥ २५॥

१. **यावतीनाम् ओषधीनाम्**=जितनी ओषधियों को **अघ्न्या गावः**-कभी भी न मारने योग्य गौएँ **प्राश्नन्ति**=खाती हैं **यावतीनाम् अजा अवयः**=जितनी ओषधियों को भेड़-बकरियाँ खाती हैं, **तावतीः**=उतनी, अर्थात् वे सब **ओषधीः**=ओषधियाँ **आभृताः**=आभृत हुई-हुई—समन्तात् धारण की हुई **तुभ्यम् शर्म यच्छन्तु**-तुझे सुख प्रदान करें।

भावार्थ—गौओं, भेड़ों व बकरियों से खाई जानेवाली ओषधियाँ हमारे लिए सुखकर हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥

विश्वभेषजीः (वीरुधः)

यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः ।
तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ॥ २६ ॥

१. **यावतीषु**-जितनी वीरुधों में **भिषजः मनुष्याः**-वैद्य लोग **भेषजं विदुः**-रोग की चिकित्सा करनेवाले औषध को जानते हैं, **तावतीः**-उतनी **विश्वभेषजीः** सब रोगों का प्रतीकार करनेवाली वीरुधों को **त्वां अभि आभरामि**-तुझे चारों ओर से प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थ—औषध निर्माण के लिए साधनभूत सब लताएँ हमारे लिए सुलभ हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

संमातरः इव

पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत। संमातरइव दुह्रामस्मा अरिष्टतातये ॥ २७ ॥

१. **पुष्पवतीः**-पुष्पोंवाली **प्रसूमतीः**=सुन्दर कोंपलवाली, **फलिनीः**-फलवाली **उत** और **अफलाः**-फलरहित सब ओषधियाँ **संमातरः इव**-सम्मिलित माताओं के समान **अस्मै अरिष्टतातये**-इस पुरुष के रोग-निवारणरूप कौशल के लिए **दुह्राम्**-रस का दोहन करें।

भावार्थ—विविध ओषधियाँ माताओं के समान हमारे लिए पुष्टिकर रस का दोहन करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥

पञ्चशलात् दशशलात्

उत्त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत।
अथो यमस्य पड्बीशाद्विश्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥ २८ ॥

१. **त्वा** तुझे **पञ्चशलात्**=पाँच भूतों से बने इस शरीर में (शल गतौ) गति करनेवाले रोग से **उत आहार्षम्**-ऊपर उठाता हूँ, **अथो**-और अब इस नीरोग शरीर में **दशशलात् उत** दस इन्द्रियों में गति करनेवाले शक्तिक्षीणतारूप दोष से भी ऊपर उठाता हूँ। २. **अथो**=अब **यमस्य पड्बीशात्**-यम के पादबन्धन से तुझे मुक्त करता हूँ—दीर्घजीवी बनाता हूँ और **विश्वस्मात्** सम्पूर्ण **देवकिल्बिषात्**-देवों के विषय में किये गये पापों से भी तुझे ऊपर उठाता हूँ।

भावार्थ—हम शरीर व इन्द्रियों में स्वस्थ बनें। हमें अजितेन्द्रियता के कारण असमय की मृत्यु प्राप्त न हो। हम प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन न करते हुए प्रभु के प्रिय बनें।

अपने को तपस्या की अग्नि में परिपक्व करनेवाला यह उपासक 'भृगु' कहलाता है—अङ्ग प्रत्यङ्ग में रसवाला होने से 'अङ्गिराः' है, यही अगले सूक्त का ऋषि है।

८. [अष्टमं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

शक्रः, शूरः, पुरन्दरः

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरन्दरः।
यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥ १ ॥

१. **इन्द्रः**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला राजा **मन्थिता** शत्रुओं का विलोडन करनेवाला होता है। यह **मन्थतु**-शत्रु सैन्य का विलोडन (हिंसन) करे, **शक्रः**-शक्तिमान् हो, **शूरः**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला हो, **पुरन्दरः**-शत्रुओं की पुरियों का विदारण करे। २. हे प्रभो! आप ऐसा

अनुग्रह करो **यथा**=जिससे कि **अमित्राणाम्**-शत्रुओं की **सहस्रशः सेनाः**-हज़ारों की सेनाओं को **हनाम**=हम नष्ट करनेवाले बनें।

भावार्थ—राजा शक्तिशाली हो, शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला हो, शत्रु-दुर्गों का विध्वंस करे। शत्रु सैन्यों का विलोडन करता हुआ शत्रुसैन्य का विध्वंस कर दे।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती** ॥

उपध्मानी पूतिरज्जुः

पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम्।
धूममग्निं परादृश्याऽमित्रा हृत्स्वा दधतां भयम्॥ २॥

१. **उपध्मानी**=बड़े शब्द (विस्फोट) के साथ आग लगा देनेवाली, **पूतिरज्जुः**=दुर्गन्धयुक्त रस्सी (बारुद की बत्ती) **अमूम् सेनाम्**=इस शत्रु-सैन्य को **पूतिं कृणोतु**=दुर्गन्धि से तितर-बितर (पूतिः विशरणम्) कर दे। इस उपध्मानी पूतिरज्जु के **धूमं अग्निम्**=धूएँ व अग्नि को **परादृश्य**=दूर से ही देखकर **अमित्राः** शत्रु **हृत्सु**-हृदयों में **भयं आ दधताम्**=भय धारण करें।

भावार्थ—विस्फोट के साथ जल उठनेवाली बारूद की बत्ती के प्रयोग से शत्रु तितर-बितर हो जाएँ। वे इसके धूएँ व अग्नि को दूर से ही देखकर भयभीत हो उठें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥

अश्वत्थ, खदिर, वधक

अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खादामून्खदिराजिरम्।
ताजद्भङ्गइव भज्यन्तां हन्त्वेनान्वधको वधैः॥ ३॥

१. हे **अश्वत्थ**-(अश्वे तिष्ठति) घुड़सवार सैनिक! **अमून्**=उन शत्रुओं को **निः शृणीहि**=निश्चितरूप से हिंसित करनेवाला बन। हे **खदिर** (खद् स्थैर्यहिंसयोः)-स्थिरता से शत्रुओं का हिंसन करनेवाले! **अमून्** उन शत्रुओं को **अजिरम्**=शीघ्र ही **खाद** खा जा—मार दे। ये शत्रु इसप्रकार **भज्यन्ताम्**=भाग खड़े हों—रण में इनका इसप्रकार भंग हो जाए, **इव**=जैसेकि **ताजद्भङ्गः**-(ताजत् क्षिप्रम्) शीघ्रता से टूट जानेवाला (ताजत् भङ्गो यस्य) सरकण्डा टूट जाता है। **एनान्**=रण में व्यस्त इन शत्रुओं को **वधकः**=शत्रु-वध करनेवाला **वधैः हन्तु**=वध-साधन आयुधों से नष्ट करे, तलवार आदि से उन्हें छिन्नमस्तक करे।

भावार्थ—अश्वत्थों, खदिरों व वधकों द्वारा शीघ्र ही शत्रुसैन्य का हिंसन किया जाए।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥
छन्दः—**बृहतीपुरस्तात्प्रस्तारपङ्क्तिः** ॥

परुषाह्व

परुषानमून्परुषाह्वः कृणोतु हन्त्वेनान्वधको वधैः।
क्षिप्रं शरइव भज्यन्तां बृहज्जालेन सन्दिताः॥ ४॥

१. **परुषाह्वः**=कठोर व भयंकर आह्वान (ललकारवाला) यह सेनापति **अमून् परुषान् कृणोतु**=उन कठोर शत्रुओं को भी हिंसित करनेवाला हो (कृणोति kills)। **वधकः**=शत्रु-वध करनेवाला यह सेनापति **एनान् वधैः हन्तु**-इन शत्रु-सैन्यों को वध साधन आयुधों से नष्ट कर डाले। **बृहत् जालेन**=हमारे विशाल सैन्य जाल से **संदिताः**=बद्ध-से हुए-हुए ये शत्रु **क्षिप्रम्**-शीघ्र ही इसप्रकार **भज्यन्ताम्**=टूट जाएँ, **इव**=जैसेकि **शरः**=एक सरकण्डा टूट जाता है। इन शत्रुओं में जमकर लड़ने का सामर्थ्य न रहे और ये रणांगण से भाग खड़े हों। हमारा सैन्य-जाल इन्हें

इसप्रकार घेर-सा ले कि इनके सामने पराजय को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग न रहे।

भावार्थ—सेनापति शत्रुवध करनेवाला हो। शत्रुओं को सैन्य जाल से घेरकर शत्रुओं के घुटने टिकवा दे।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विशाल जाल (बृहज्जाल)

अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः।
तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत्॥ ५॥

अन्तरिक्षं जालम् आसीत् इन्द्र (शक्र सेनापति) का सैन्य-जाल इतना विशाल था कि मानो अन्तरिक्ष ही जाल था। **महीः दिशः जालदण्डाः** ये महान् दिशाएँ ही उस जाल की दण्ड थीं। **तेन**-उस महान् सैन्य-जाल से **अभिधाय**=बाँधकर **शक्रः**-इस शक्तिशाली सेनापति ने **दस्यूनां सेनाम्**-दस्युओं की सेना को **अपावपत्**-सुदूर खदेड़ दिया। शत्रु-सैन्य का छेदन भेदन करके राष्ट्र-रक्षण करना ही तो इस शक्र का कर्त्तव्य है।

भावार्थ—सेनापति शक्तिशाली हो। वह अपने विशाल सैन्य जाल से शत्रु-सैन्य को घेर कर छिन्न-भिन्न करनेवाला हो।

ऋषिः **भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः** ॥

पूर्ण शत्रु-पराजय

बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः।
तेन शत्रूनभि सर्वान्न्यु ꣡ब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम्॥ ६॥

१. **वाजिनीवतः** शक्तिशाली सैन्यवाले **शक्रस्य**-इस शक्तिशाली राजा का **जालम्**-सैन्य जाल **हि** निश्चय से **बृहतः बृहत्**-विशाल से-विशालतर है। इसकी सेना इतनी बड़ी है जितनी बड़ी कि हो सकती है **तेन** उस सैन्य-जाल से **सर्वान् शत्रून्** सब शत्रुओं को **अभि न्युब्ज**-झुका दे—पराजित कर दे—नीचे गिरा दे (bend, press down, throw down)। इनका इस सैन्य जाल से इसप्रकार बन्धन करे कि **एषाम्**-इनमें से **कतमश्चन** कोई भी **न मुच्यातै** छूट न पाये। तेरा सैन्य-जाल सब शत्रुओं का बन्धन करनेवाला हो।

भावार्थ—शक्तिशाली सेनावाला यह राजा अपने विशाल सैन्य-जाल से शत्रु सैन्य का अशेषेण पराजय करनेवाला हो।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥
छन्दः—**विपरीतपादलक्ष्माचतुष्पदाऽतिजगती** ॥

सहस्रार्घ, शतवीर्य

बृहत्ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्य ꣡र्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया॥ ७॥

१. हे **शूर**-शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले! **इन्द्र**-शत्रुविद्रावक राजन्! **बृहतः**-बढ़ी हुई सैन्य शक्तिवाले **सहस्रार्घस्य**-हज़ारों से पूज्य **शतवीर्यस्य**-सैकड़ों सामर्थ्योंवाले **ते** तेरा **जालम्**=सैन्य जाल **बृहत्** विशाल है। **शक्रः** शक्तिशाली सेनापति ने **सेनया** अपनी सेना से **तेन** उस जाल से **अभिधाय** बाँधकर **दस्यूनाम्**-इन दस्युओं के **शतं सहस्रं अयुतं अर्बुदम्**-सौ, हज़ार, दस हज़ार व लाख सैनिकों को **नि जघान**=समाप्त कर दिया।

भावार्थ—राजा अपने सैन्य-जाल को विशाल बनाये। यह विजयी होता हुआ पूज्य व शक्तिशाली बने। शत्रु हज़ारों व लाखों हों तो भी इन्हें पराजित करनेवाला बने।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती** ॥

'महान् लोक' रूप जाल

अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान्।
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान्॥ ८॥

१. **अयम् महान् लोकः**=यह महान् लोक **महतः शक्रस्य**-महनीय (पूजनीय) शक्तिशाली प्रभु का **जालं आसीत्** जाल है। इस जाल में फँसा हुआ व्यक्ति अपने स्वरूप को ही नहीं पहचान पाता—योगमाया से समावृत होने के कारण वह प्रभु जीव को दृष्टिगोचर नहीं होता। जीव का जीवन अन्धकारमय-सा बीत जाता है। २. इसी प्रकार एक राजा भी कहता है कि **अहम्**-मैं **तेन इन्द्रजालेन**-उस इन्द्रजाल से—शत्रु-विद्रावक सेनापति से संचालित सैन्यसमूह से **अमून् सर्वान्**-उन सब शत्रुओं को **तमसा अभिदधामि** अन्धकार से बाँधता हूँ (Fasten, bind)। मेरे सैन्य से घिरे हुए शत्रु किंकर्त्तव्यविमूढ़-से हो जाते हैं—उन्हें कुछ सूझता ही नहीं।

भावार्थ—हमारे सैन्य-समूह से घिरे हुए शत्रु इसप्रकार से मूढ़ से हो जाएँ जैसेकि मायामय लोक से मूढ़ बने हुए मनुष्य अपने को ही नहीं पहचान पाते।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती** ॥

उग्रा सेदिः—मोहः

सेदिरुग्रा व्यृ ∫ द्धिरार्तिश्चानपवाचना।
श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान्॥ ९॥

१. **उग्रा सेदिः**=तीव्र महामारी आदि क्लेश (Exhaustion), **व्यृद्धिः**=निर्धनता (विगत ऋद्धि) **च**-और **अनपवाचना आर्तिः**-अकथनीय पीड़ा **श्रमः**-थकावट (Fatigue), **तन्द्रीः च मोहः च**-आलस्य और मूढ़ता, **तैः**-उन सब बातों से **अमून् सर्वान्**-उन सब शत्रुओं को मैं **अभिदधामि**=बाँधता हूँ—घेरता हूँ।

भावार्थ—हम शत्रुओं को ऐसे अस्त्रों से आक्रान्त करते हैं कि वे तीव्र महामारी आदि से पीड़ित होकर विनष्ट हो जाते हैं। इन्हें घेरकर ऐसी स्थिति में कर देते हैं कि ये अन्नादि के अभाव से भूखे मरने लगते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती** ॥

मृत्यु के 'अघ-ल' दूत

मृत्यवेऽमून्प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः।
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान्प्रति नयामि बद्ध्वा॥ १०॥

१. **अमून्**=उन शत्रुओं को **मृत्यवे प्रयच्छामि**-मृत्यु के लिए देता हूँ। **अमी** वे शत्रु **मृत्युपाशैः सिताः**=मृत्यु के पाशों से बद्ध होते हैं। 'विषाद, दरिद्रता, पीड़ा, थकान, मूर्च्छा' आदि ही मृत्यु के पाश हैं, इनसे मैं इन शत्रुओं को बाँधता हूँ। २. **ये**=जो **मृत्योः**=मृत्यु का **अघलाः**=कष्ट प्राप्त करानेवाले **दूताः**-दूत हैं, **तेभ्यः**=उन रोग-विकारादि यमदूतों के लिए **एनान्** इन शत्रुओं को **बद्ध्वा**=बाँधकर **प्रतिनयामि**=प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थ—हम शत्रुओं को 'विषाद, दरिद्रता, पीड़ा' आदि मृत्यु के दूतों के लिए प्राप्त कराके नष्ट करते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**पथ्याबृहती** ॥

मृत्युदूताः—यमदूताः

नयतामून्मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत।
परःसहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान्मत्यं भवस्य॥ ११ ॥

१. हे **मृत्युदूताः**='विषाद, पीड़ा' आदि मृत्युदूतो! **अमून् नयत**=इन शत्रुओं को ले जाओ—विनष्ट कर दो। हे **यमदूताः**-यम (नियन्ता प्रभु) के 'आँधी, तूफान, अतिवृष्टि' रूप दूतो! **अप उम्भत**-(उंभ् to confine) उन्हें हमसे दूर बद्ध करो—ये शत्रु हमारे समीप न आ सकें। २. **परः सहस्राः**-ये हज़ारों शत्रु **हन्यन्ताम्**-मारे जाएँ। **एनान्**-इन शत्रुओं को **भवस्य**-सर्वोत्पादक प्रभु से प्राप्त कराई गई **मत्यम्**-तीव्र मानस पीड़ा (harrowing) **तृणेढु**-हिंसित करनेवाली हो।

भावार्थ—हमारे शत्रु आधिदैविक कष्टों से पीड़ित होकर हमसे दूर रहें। तीव्र मानस पीड़ाएँ उनके विनाश का कारण बनें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥

'साध्य, रुद्र, वसु, आदित्य'

साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा।
रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः॥ १२ ॥

१. **साध्याः**=साधनामय जीवनवाले लोग **एकं जालदण्डम्**=इस लोकरूप जाल के एक दण्ड को **उद्यत्य** अपने से दूर (keep back, stop) करके **ओजसा यन्ति** ओजस्विता के साथ गति करते हैं। रुद्राः-(रुत् द्र) रोगों को अपने से दूर करनेवाले—प्राणसाधना में प्रवृत्त लोग **एकम्**-इस लोकजाल के एक दण्ड को अपने से दूर करके गतिवाले होते हैं। इसी प्रकार **एकं वसवः** एक दण्ड को वसु लोग—अपने निवास को उत्तम बनानेवाले लोग अपने से दूर करते हैं **एकः**-चौथा बचा हुआ एक जालदण्ड **आदित्यैः उद्यतः**-ऊँचे-से ऊँचे ज्ञान व गुणों का आदान करनेवालों से दूर किया गया है। २. संसार जाल में 'साध्य, रुद्र, वसु व आदित्य' ही बद्ध नहीं होते। साधना की प्रवृत्ति से उत्तम जीवन का प्रारम्भ होता है। जीवन के उत्कर्ष के लिए रोग विद्रावण आवश्यक है। अपने निवास को उत्तम बनाकर हम औरों को बसानेवाले (वासयन्ति इति वसवः) बनें। अधिक से-अधिक ज्ञान व गुणों का ग्रहण करते हुए हम आदित्य हों, तभी हम इस संसार-जाल में फँसने से बच सकेंगे

भावार्थ—हम 'साध्य, रुद्र, वसु व आदित्य' बनते हुए इस संसार में न फँसकर ओजस्विता के साथ आगे बढ़ें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विश्वेदेवाः—अङ्गिरसः

विश्वेदेवा उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा।
मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम्॥ १३ ॥

१. **विश्वेदेवाः** देववृत्ति के सब पुरुष **उपरिष्टात्**-ऊपर से—विषयों से ऊपर उठने की वृत्ति से **उब्जन्तः**-इन वासनारूप शत्रुओं को पादाक्रान्त (subdue, press down) करते हुए—दबाते हुए **ओजसा यन्तु**-ओजस्विता के साथ आगे बढ़ें। २. **अङ्गिरसः** अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रसवाले ये प्रगतिशील पुरुष (अगि गतौ) **मध्येन**-मध्यमार्ग को अपनाने के द्वारा—'अति' से बचने के द्वारा **महीं सेनाम्**=इन वासनारूप शत्रुओं की महती सेना को **घ्नन्तः**-नष्ट करते हुए **यन्तु** आगे बढ़ें।

भावार्थ—वासनारूप शत्रुओं को पादाक्रान्त करके ही हम 'देव' बनेंगे और मध्य-मार्ग को अपनाने के द्वारा वासनारूप शत्रु सैन्य को कुचलकर 'अङ्गिरस' बन पाएँगे।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सेना के लिए आवश्यक पदार्थों का जुटाना

वनस्पतीन्वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः।
द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन्॥ १४॥

१. **वनस्पतीन्**=बिना पुष्प के फलवाली वनस्पतियों को, **वानस्पत्यान्**-पुष्पों से फलवाले वानस्पत्यों को **ओषधीः**=फलपाकान्त धान्य आदि को, **उत**=और **वीरुधः**=वीरुधों को—बेलों को, इनके अतिरिक्त **द्विपात्**=दो पाँववाले मनुष्यों को तथा **चतुष्पात्**-बैल-घोड़े आदि पशुओं को इसप्रकार **इष्णामि**=शीघ्रता से यथास्थान पहुँचाता हूँ, **यथा**=जिससे **अमूं सेनाम्**=उस शत्रुसेना को ये **हनन्**=मारनेवाले हों। २. अपनी सेना को आवश्यक पदार्थ प्राप्त न होंगे तो सैनिकों में शत्रुओं से लड़ने का उत्साह मन्द पड़ जाएगा। उस स्थिति में शत्रुसैन्यविध्वंस की बात तो दूर रही, यही भय रहेगा कि अपनी सेना में ही कुछ उपद्रव न खड़ा हो जाए।

भावार्थ—सेना को खान-पान के व अन्य सब साधन प्राप्त कराने आवश्यक हैं। उनके अभाव में सैनिकों के उत्साह में कमी होगी और वे शत्रुसैन्य को पराजित न कर पाएँगे।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

गन्धर्व, अप्सरस्, सर्प, देव, पुण्यजन, पितर

गन्धर्वाप्सरसः सर्पान्देवान्पुण्यजनान्पितॄन्।
दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन्॥ १५॥

१. **गन्धर्वान्**=(गां धारयन्ति) पृथिवी का धारण करनेवाले 'पदातियों, रथियों व घुड़सवारों' को **अप्सरसः**=जल में विचारनेवाले नौसैनिकों (Navy) को, **सर्पान्**=भूमि पर पेट के बल आगे बढ़नेवाले सैनिकों को, **देवान्**-विजिगीषुओं को, **पुण्यजनान्**=धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों को, **पितॄन्**=प्रेरणा देनेवाले पितरों को **दृष्टान्**=देखे हुए, अर्थात् परीक्षित रणकुशल पुरुषों को तथा **अदृष्टान्**=अपरीक्षित नव सैनिकों को भी **इष्णामि**=इसप्रकार प्रेरित करता हूँ, **यथा**=जिससे **अमूं सेनाम्**=उस शत्रुसैन्य को ये सब **हनन्**=मारनेवाले हों।

भावार्थ—मैं जल, थल के सभी सैनिकों को इसप्रकार प्रेरित करता हूँ, जिससे वे शत्रुसैन्य का विध्वंस करनेवाले हों।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मृत्युपाश

इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः॥ १६॥

१. **इमे**=ये **मृत्युपाशाः उप्ताः**=शत्रुसैन्य को मृत्यु प्राप्त करानेवाले पाश लगा दिये गये हैं, हे शत्रुसैन्य! **यान् आक्रम्य**=जिन पाशों पर पग रखकर तू **न मुच्यसे**=फिर छूट नहीं पाता, उस जाल में तू फँस ही जाता है। २. **इदं कूटम्**=यह जाल (trap) **अमुष्याः सेनायाः**=उस शत्रुसेना के **सहस्रशः हन्तु**=हज़ारों ही सैनिकों को नष्ट करनेवाला हो।

भावार्थ—भूमि पर इसप्रकार घातक प्रयोगों का जाल बिछाया जाए कि उसपर पग रखकर सहस्रशः शत्रु-सैन्य विध्वस्त हो जाए।

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः॥ देवता—इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

अयं होमः, सहस्रहः

घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः।
भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम्॥ १७॥

१. **घर्मः**-कुण्ड (cauldron) **अग्निना समिद्धः** अग्नि से दीप्त हो उठा है—कुण्ड में अग्नि सम्यक् प्रज्वलित हो गई है। **अयं होमः** ये होम **सहस्रहः**-हज़ारों रोगकृमियों का विनाशक है। २. हे **शर्वः** शत्रुसंहारक प्रभो! **भवः च** हमें जन्म देनेवाला पिता **च** और **पृश्निबाहुः** (पृश्नी a ray of light, बाहुः यस्य, बाह्र प्रयत्ने) ज्ञान रश्मियों को प्राप्त कराने में प्रयत्न है जिसका ऐसा आचार्य—ये दोनों ही **अमूं सेनाम्** उस शत्रुभूत वासना सैन्य का **हतम्** विनाश करें।

भावार्थ—घर में अग्निहोत्र होने से रोगकृमियों का विनाश होता है तथा पिता, माता व आचार्य वासनात्मक वृत्तियों का विनाश करते हैं। उचित शिक्षण के द्वारा वे हममें वासनाओं को नहीं पनपने देते।

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः॥ देवता—इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

क्षुधं, सेदिं, वधं, भयम्

मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम्।
इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम्॥ १८॥

१. हमारे शत्रु **मृत्योः आषम्** (अष् दीप्तौ) मृत्यु की दीप्त ज्वाला को **आ पद्यन्ताम्** प्राप्त हों। **क्षुधम्**-भूख को, **सेदिम्** विनाशक महामारी को, **वधम्**-वध को, **भयम्** भय को—ये प्राप्त हों। हे **शर्व** शत्रुसंहारक प्रभो! आप **इन्द्रः च**-और शत्रुविद्रावक राजा **अक्षुजालाभ्याम्**-(अक्षुः a kind of net) बन्धनों व जालों से **अमूं सेनां हतम्**-उस शत्रु सैन्य को विनष्ट करें।

भावार्थ—प्रभु से शक्ति प्राप्त करके राजा शत्रुसैन्य के संहार में समर्थ हो। वह शत्रुसैन्य में भुखमरी, महामारी, वध व भय उत्पन्न करके उसका विनाश करे।

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः॥ देवता—इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च॥ छन्दः—पुरस्ताद्विराड्बृहती॥

'बृहस्पतिप्रणुत्त' शत्रु

पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा।
बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन॥ १९॥

१. हे **पराजिताः**-पराजित हुए हुए **अमित्राः**-शत्रुओ! तुम **प्रत्रसत** भयभीत हो उठो। **ब्रह्मणा** ज्ञान से **नुत्ताः** दूर धकेले हुए तुम **धावत**-भाग जाओ। **बृहस्पतिप्रणुत्तानाम्**-बृहस्पति—ज्ञानपूर्वक धकेले हुए **अमीषाम्**-उन शत्रुओं का **कश्चन**-कोई भी **मा मोचि**-न छूट जाए। २. अध्यात्म में वासनारूप शत्रु ज्ञानग्नि में दग्ध हो जाते हैं।

भावार्थ—ज्ञान के द्वारा हम वासनारूप शत्रुओं का पराजय करें। ये शत्रु ज्ञानाग्नि में दग्ध हो जाते हैं। ज्ञान के सामने वासना नहीं ठहरती।

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः॥ देवता—इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च॥ छन्दः—निचृत्पुरस्ताद्बृहती॥

भयभीत शत्रु

अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन्प्रतिधामिषुम्।
अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि॥ २०॥

१. भय के कारण **एषाम्**=हमारे शत्रुओं के **आयुधानि**=अस्त्र-शस्त्र **अवपद्यन्ताम्**=नीचे गिर जाएँ। ये **इषुं प्रतिधां मा शकन्**=बाण को धनुष् पर धारण करने में समर्थ न हों। **अथ**=अब **इषवः**=हमारे बाण **बहु बिभ्यताम्** बहुत भयभीत हुए हुए **एषाम्**=इनके **मर्मणि घ्नन्तु** मर्म-स्थलों को हिंसित करनेवाले हों।

भावार्थ—हमसे शत्रुसैन्य इसप्रकार भयभीत हो उठें कि उनके हाथों के अस्त्र नीचे गिर जाएँ। वे धनुष् पर बाण धारण करने में समर्थ न हों। हमारे बाण इन भयभीत शत्रुओं को मर्माहित करनेवाले हों।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मिथो विघ्नाना उपयन्तु मृत्युम्

सं क्रोशतामेनान्द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम्॥ २१॥

१. **द्यावापृथिवी**=द्युलोक और पृथिवीलोक **एनान् संक्रोशतम्**=इनकी निन्दा करें। **देवताभिः सह**=सब देवों के साथ **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष **सम्**=इनकी निन्दा करे। **ज्ञातारं मा विदन्त**=ये ज्ञानी को प्राप्त न करें, **मा प्रतिष्ठाम्**=ये प्रतिष्ठा को भी प्राप्त न हों, **मिथः विघ्नानाः**=परस्पर लड़ते हुए **मृत्युं उपयन्तु**=मृत्यु को प्राप्त करें।

भावार्थ—आपस में लड़ते हुए व्यक्ति लोकत्रयी में निन्दित होते हैं। इन्हें ज्ञानियों के सम्पर्क की रुचि नहीं होती। ये सब प्रतिष्ठा को खो बैठते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥
छन्दः—**२२ चतुष्पदाशक्वरी, २३ उपरिष्टाद्बृहती** ॥

देवरथ

दिशश्चतस्रोऽश्वतर्यो देवरथस्य पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्धिः।
द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोऽभीशवोऽन्तर्देशाः किंकरा वाक्परिरथ्यम्॥ २२॥
संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम्।
इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः॥ २३॥

१. वे महेन्द्र (प्रभो) जब इस विश्वरूप त्रिपुर का विजय करते हैं तब **देवरथस्य**=उस विजेता प्रभु के रथ (ब्रह्माण्डरूप रथ) की **चतस्रः दिशः**=चारों दिशाएँ **अश्वतर्यः**=चार घोड़ियों के समान हैं। **पुरोडाशाः**=यज्ञ में डाले जानेवाले चरुद्रव्य **शफाः**=घोड़ियों के खुर हैं। **अन्तरिक्षं उद्धिः** अन्तरिक्ष अक्षों के ऊपर का भाग है (the part which rests on the axles)। **द्यावापृथिवी**=द्युलोक और पृथिवीलोक **पक्षसी**=दोनों पासे हैं। **ऋतवः अभीशवः** ऋतुएँ रासें (लगाम) हैं। **अन्तर्देशाः**=बीच के प्रदेश या लोक **किंकराः**=रथ में पीछे खड़े होनेवाले चाकर हैं। **वाक्**=वाणी **परिरथ्यम्**=रथचक्र परिधि है। २. **संवत्सरः**=वर्ष **रथः**=रथ है, **परिवत्सरः**=(सूर्य-परिवत्सरः—ता० १७.१३.१७) सूर्य **रथोपस्थः**=रथ में बैठने का स्थान (seat) है, **विराट्**=ब्रह्मा की प्रथम सन्तानभूत 'समष्टि बुद्धि', **ईषा**=युगदण्ड है। **अग्निः रथमुखम्**=अग्नि रथ का अग्रभाग है। **इन्द्रः**=मेघ (cloud) **सव्यष्ठाः**=वाम् पार्श्व में बैठनेवाला है और **चन्द्रमाः सारथिः**=चन्द्रमा सारथि है।

भावार्थ—मन्त्र वर्णित 'देवरथ' पर आरूढ़ होकर प्रभु त्रैलोक्य पर विजय कर रहे हैं। हम भी इस देवरथ के अनुकरण में इस शरीर को रथ बनाएँ और उसपर आरूढ़ होकर विजयी बनें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च** ॥
छन्दः—**त्रिष्टुबुष्णिग्गर्भापराशक्वरीपञ्चपदाजगती** ॥

नील-लोहितेन

इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा। इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहाऽमीभ्यः। नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि॥ २४॥

१. हे पुरुष! **इतः जय**-इधर जय प्राप्त कर, **इतः विजय**-इधर विजय प्राप्त कर। **संजय**-सम्यक् विजय प्राप्तकर, **जय**=विजयी ही हो, **स्वाहा**-इसके लिए तू (सु आ हा) अपना समन्तात् त्याग करनेवाला बन। २. **इमे जयन्तु**-ये हमारे वीर विजयी हों, **अमी पराजयन्ताम्**-वे शत्रु लोग पराजित हों। **एभ्यः स्वाहा**=इन हमारे वीरों के लिए (सु आह) उत्तम यश के शब्द उच्चरित हों। **अमीभ्यः दुराहा**-उन शत्रुओं के लिए अपकीर्ति हो। **अमून्** उन शत्रुओं को **नीललोहितेन**=नीले रुधिर से **अभ्यवतनोमि**-आच्छादित कर देता हूँ—भय के कारण शत्रुओं का रक्त नीला पड़ जाता है।

भावार्थ—स्वार्थ-त्याग करते हुए हम शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त करें। शत्रु पराजित हों—अपकीर्ति को प्राप्त हों, भय से उनका रुधिर नीला पड़ जाए।

शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेवाला यह साधक 'अथर्वा' बनता है—न डाँवाडोल वृत्तिवाला। यह ज्ञानी बनता है, 'कश्यपः' नामवाला होता है—तत्त्व का द्रष्टा (पश्यकः)। यही अगले सूक्त का ऋषि है। सूक्त का देवता 'विराट्' है—विशिष्ट दीप्तिवाला प्रभु। उसके विषय में प्रश्न करते हैं कि—

९. [नवमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वत्सौ

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात्कतमस्याः पृथिव्याः। वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा॥ १॥

१. प्रभु विराट् हैं—विशिष्ट दीप्तिवाले हैं। प्रकृति सलिलरूप है—सत् है और सारा संसार इसमें लीन हुआ हुआ है, जैसे बच्चा मातृगर्भ में। प्रकृति के इस रूप को 'आपः' भी कहा गया है। यह प्रारम्भ में सूक्ष्म जल-कणों के बादल की भाँति व्याप्त सी हो रही है तभी इसे 'नभस्' (nebula) नाम भी दिया जाता है। प्रभु और प्रकृति इस चराचर जगत् के पिता व माता हैं। पञ्चभूतों से बना सम्पूर्ण जगत् जड़ है। इन्हीं पञ्चभूतों से बना शरीर जब आत्मा को प्राप्त होता है तब वह चेतन हो उठता है। शरीरधारी जीव चेतनजगत् कहाता है। यह चेतन व जड़ जगत् ही चराचर संसार है। २. मन्त्र के प्रश्न हैं कि **कुतः तौ जातौ**=वे 'जड़-चेतन' कहाँ से प्रादुर्भूत हो गये। **कतमः सः अर्धः**-कौन-सी वह (ऋधु वृद्धौ) ऋद्धिमान् सत्ता है, जिसने कि इन्हें जन्म दिया? **कस्मात् लोकात्**-किस (लोकृ दर्शने) प्रकाशमय सत्ता से और **कतमस्याः पृथिव्याः**-किस फैले हुए तत्त्व से (प्रथ विस्तारे) ये जड़ चेतन उत्पन्न हो गये? ३. इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि **वत्सौ**-ये दोनों जड़-चेतनारूप वत्स (सन्तान) **विराजः**-उस विशिष्ट दीप्तिवाले प्रभु से तथा **सलिलात्**-सलिलरूप प्रकृति से **उत् एताम्**-उद्गत हुए। प्रश्नकर्ता पुनः पूछता है कि **तौ त्वा पृच्छामि**-उन दोनों वत्सों को लक्ष्य करके ही तुझसे पूछता हूँ कि **कतरेण दुग्धा**-इन दोनों में से किसने वेदवाणीरूप गौ का दोहन किया—प्रभु से दी गई वेदवाणी को कौन प्राप्त हुआ?

भावार्थ—प्रभु विराट् हैं, प्रकृति सलिलरूप से चारों ओर फैली हुई है। प्रभुरूप पिता प्रकृतिरूप माता में चराचर जगद्रूप दो वत्सों को जन्म देते हैं। इनमें से चेतन (चर) जीवरूप

वत्स प्रभु से वेदज्ञान प्राप्त करता है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

त्रिभुज् योनि

यो अक्रन्दयत्सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः।
वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः॥ २॥

१. प्रभु वे हैं **यः**=जोकि **महित्वा**=अपनी महिमा से **सलिलम्**=इस सलिलरूपा प्रकृति को **अक्रन्दयत्**=गर्जना-सी कराते हैं—इस अणु-समुद्ररूप प्रकृति में विक्षोभ पैदा करते हैं। वे प्रभु इस **त्रिभुजम्**-सत्त्व, रजस् व तमरूप त्रिगुणों का पालन करनेवाली प्रकृति को **योनिं कृत्वा**-घर-सा बनाकर **शयानः**-निवास कर रहे हैं। यह प्रकृति प्रभु की योनि है, प्रभु इसमें गर्भ धारण करते हैं, तब यह सम्पूर्ण संसार आविर्भूत होता है। २. यह जीव उस **कामदुघः**=सब कामनाओं को पूरण करनेवाले **विराजः**-विशिष्ट दीप्तिवाले प्रभु का **वत्सः**=वत्स है—पुत्र है। **सः**=वह वत्स (जीव) **पराचैः**=(परा अञ्च्) बहिर्गमनों से—प्रकृति के विषयों में फँसने से **तन्वः गुहा चक्रे**=शरीररूप संवरणों (hiding places) को उत्पन्न कर लेता है। यदि जीव विषयों में न भटके तो उसे पुनः इस तनुरूप गुहा में न आना पड़े।

भावार्थ—प्रभु प्रकृति को विक्षुब्ध करते हैं तभी सृष्टि उत्पन्न होती है। प्रभु इस त्रिगुणमयी प्रकृति को योनि बनाकर रह रहे हैं। जीव कामनाओं के पूरक विराट् प्रभु का वत्स है। यह विषयों में भटकने के कारण शरीररूप संवरणों (क़ैदखानों) को प्राप्त किया करता है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः** ॥

त्रिगुणा प्रकृति के साथ चौथा प्रभु

यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम्।
ब्रह्मैनद्विद्यात्तपसा विपश्चिद्यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम्॥ ३॥

१. **यानि त्रीणि**=जो ये प्रकृति के तीन 'सत्त्व, रज व तम' रूप गुण हैं ये **बृहन्ति**=(बृहि वृद्धौ) इस चराचर संसार के रूप में बढ़ते हैं। **येषां चतुर्थम्**=जिनका चौथा—इन तीनों गुणों से बनी प्रकृति को धारण करनेवाला चतुर्थ प्रभु **वाचम् वियुनक्ति**=वेदवाणी को जीवों के साथ जोड़ता है। वे प्रभु ही संसार का निर्माण करके जीवों के लिए ज्ञान देते हैं। २. **विपश्चित्**-ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि **तपसा**=तप के द्वारा **एनत् ब्रह्म विद्यात्**=इस ब्रह्म को जाने, **यस्मिन्**=जिस ब्रह्म में **एकं युज्यते**='एक' इस संख्या का प्रयोग होता है, **यस्मिन् एकम्**=जिसमें 'एक' ही संख्या का प्रयोग होता है (**स एष एक एकवृदेकव**—अथर्व० १३.१.२०)।

भावार्थ—सत्त्व, रज व तमरूप प्रकृति के तीन गुण इस संसार के रूप में आते हैं। चौथा ब्रह्म जीवों के लिए वेदज्ञान देता है। वह ब्रह्म एक ही है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

संसार का निर्माण

बृहतः परि सामानि षष्ठात्पञ्चाधि निर्मिता।
बृहद् बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता॥ ४॥
बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता।
माया ह जज्ञे मात्राया मायाया मातली परि॥ ५॥

१. '**अमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोऽहम्**' इस (पार० कां० १ कं० ६।३) वाक्य

के अनुसार पुरुष स्त्री का द्वन्द्व 'साम' है। इन द्वन्द्वों के शरीर प्रभु ने पञ्चमहाभूतों के द्वारा बनाये (तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना)। **षष्ठात्** उस छठे प्रभु के द्वारा **पञ्च सामानि** पाँच स्त्री पुरुषों के द्वन्द्वरूप शरीर—'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व निषाद' सभी द्वन्द्व **बृहतः परि** (परि—from, out of) महाभूत (बृहत्-महान्) समाधि में से **अधिनिर्मिता**-बनाये गये। पाँच साम हैं, छठा इनका अधिष्ठाता प्रभु है। **बृहत्**-ये महाभूतसमूह **बृहत्या**-बृहती से—महत्तत्त्व से (प्रकृतेर्महान्) **निर्मितम्**-बनाया गया। अब प्रश्न होता है कि यह **बृहती**-महत्तत्त्व **कुतः**-कहाँ से **अधिमिता**-निर्मित हुआ? इस प्रश्न का उत्तर अगले मन्त्र में देते हैं कि—२. **बृहती**-महत्तत्त्व **मात्रायाः परि** (मात्रा-matter-मूल प्रकृति) प्रकृति में से निर्मित हुआ। **मातुः** इस निर्माता प्रभु की अध्यक्षता में **मात्रा अधिनिर्मिता**=('माता प्रजाता'-माता ने बच्चे को जन्म दिया) प्रकृति ने इस महत्तत्त्वरूप सन्तान को जन्म दिया। ३. 'इस संसार को बनाने के लिए प्रभु को प्रज्ञान कहाँ से उत्पन्न हुआ'? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि **माया** प्रज्ञा **ह**-निश्चय से **मायायाः जज्ञे** प्रज्ञा से ही प्रादुर्भूत हुई, अर्थात् 'प्रभु की प्रज्ञा कहीं और से उत्पन्न हो' ऐसी बात नहीं। प्रभु 'प्रज्ञानघन' ही हैं। **मायायाः**-इस प्रज्ञा के **परि मातली** परे (beyond, more than) प्रभु हैं। प्रभु केवल सर्वज्ञ न होकर सर्वशक्तिमान् व सर्वेश्वर्यवान् भी हैं। 'माया व प्रज्ञा' प्रभु का एक रूप है, प्रभु उससे अधिक हैं। 'मातली' इन्द्र सारथि कहलाता है। 'इन्द्र' जीव है, प्रभु इन जीवों को घुमा रहे हैं। जीवों के शरीररूप रथों के सञ्चालक प्रभु ही हैं।

भावार्थ—प्रभु ने पञ्चमहाभूतों से ब्राह्मण आदि पाँच वर्णों के स्त्री पुरुषों के शरीरों के द्वन्द्वों का निर्माण किया है। ये महाभूत महत्तत्त्व से हुए। महत्तत्त्व प्रकृति से। प्रभु की अध्यक्षता में प्रकृति ने इन महत्तत्त्व आदि को जन्म दिया। प्रभु की प्रज्ञा किसी और से प्रादुर्भूत नहीं हुई। प्रभु केवल प्रज्ञानस्वरूप न होकर सर्वशक्तिमान् व सर्वेश्वर भी हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वैश्वानर

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद्रोदसी विबबाधे अग्निः।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ॥ ६ ॥

१. **वैश्वानरस्य**-सब नरों के हितकारी व सबका नयन करनेवाले प्रभु की **प्रतिमा** माप (extent, measure) विस्तार वहाँ तक है, **यावत् उपरि द्यौः** जहाँ तक ऊपर द्युलोक है। **अग्निः** वे अग्रणी प्रभु **रोदसी विबबाधे**=द्यावापृथिवी का आलोडन करनेवाले हैं। २. **ततः अमुतः षष्ठात्** उस छठे (मन्त्र चार में) दूरतम (दूरात् सुदूरे) प्रभु से **स्तोमाः** प्राण (शत० ८।४।१।३ प्राणा वै स्तोमाः) **आयन्ति**-चारों ओर आते हैं, अर्थात् दूर से दूर स्थित प्रभु सब प्राणियों में प्राणों का सञ्चार करते हैं। वे प्रभु जोकि **अह्नः**-(अहन्) कभी नष्ट होनेवाले नहीं, इन प्राणों को प्राप्त कराते हैं, और **इतः उत्**-यहाँ से ऊपर उठकर—शरीर से निकलकर **षष्ठं अभियन्ति**-ये प्राण पुनः उस छठे प्रभु की ओर चले जाते हैं।

भावार्थ—वैश्वानर प्रभु सर्वत्र व्याप्त हैं। प्रभु ही सर्वत्र प्राणों का सञ्चार करते हैं, और ये प्राण फिर—मृत्यु होने पर, प्रभु की ओर चले जाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वेदवाणी

षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ॥ ७ ॥

१. हे **कश्यप**=सर्वद्रष्टा प्रभो! **षट् त्वा**-पाँच सामों को (मन्त्र चार में) बनानेवाले छठे आपको **इमे ऋषयः**=ये ऋषि **पृच्छाम**-पूछते हैं। **त्वं हि**-आप ही **युक्तम्** हमारे साथ सम्बद्ध इन बुद्धि आदि पदार्थों को **योग्यं च**-और जोड़ने योग्य ज्ञानादि को **युयुक्षे** जोड़ते हैं। आप ही बुद्धि व ज्ञानादि देनेवाले हैं। २. (वाग्वै विराट्—शत० ३।५।१।३४) **विराजम्**=इन सब ज्ञानों का दीपन करनेवाली वेदवाणी को **ब्रह्मणः पितरम् आहुः**=ज्ञान का रक्षक कहते हैं। **ताम्**=उस वेदवाणी को हम **सखिभ्यः**=सखाओं के लिए **यतिधा**=जितने भी प्रकार से सम्भव हो **विधेहि**-धारण कीजिए—हमें वेदवाणी प्राप्त कराइए।

भावार्थ—ऋषि लोग प्रभु को जानने का प्रयत्न करते हैं। प्रभु ही बुद्धि व ज्ञान देनेवाले हैं। ज्ञान की रक्षिका वेदवाणी को प्रभु ही हमारे लिए सब प्रकार से प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि

यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम्।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराडृषयः परमे व्यो ऽमन्॥ ८॥

१. प्रभु ने जीव के लिए वेदवाणी द्वारा ही यज्ञों का प्रतिपादन किया है, अतः वेदवाणी वह है **यां प्रच्युताम् अनु**=जिसके प्रच्युत (हमसे पृथक्) होने पर **यज्ञाः प्रच्यवन्ते**=यज्ञों का भी विलोप हो जाता है और **उपतिष्ठमानाम् (याम्) अनु**-जिसके उपासित होने पर **उपतिष्ठन्ते**-यज्ञ भी हमारे जीवन में उपस्थित रहते हैं। २. **यस्याः**-जिसके **व्रते**-व्रत में—नियमपूर्वक अध्ययन के पुण्यकार्य में, **प्रसवे**-जिसकी प्रेरणा में **यक्षं एजति**=वह उपासनीय प्रभु हमें प्राप्त होता है। **सा विराट्**-सब ज्ञानों में दीप्त होनेवाली वह वेदवाणी ही है। हे **ऋषयः**=ऋषयो! यह वेदवाणी **परमे व्योमन्**-(वि ओम् अन्) उस सर्वोत्कृष्ट प्रभु में है जिसने एक ओर प्रकृति 'वी' और दूसरी ओर जीव 'अन्' को आश्रय दिया हुआ है। वेदवाणी का मुख्य प्रतिपाद्य विषय प्रभु है। प्रभु के प्रतिपादन में जीव व प्रकृति का प्रतिपादन होता ही है।

भावार्थ—वेद अध्ययन के साथ ही यज्ञ चलते हैं—वेद अध्ययन विलुप्त हुआ तो यज्ञ भी विलुप्त हुए। इनकी प्रेरणा में ही हम प्रभु को प्राप्त करते हैं। वेदवाणी का मुख्य प्रतिपाद्य विषय प्रभु ही है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अभिरूपा विराट्

अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्ये ऽति पश्चात्।
विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम्॥ ९॥

१. यह वेदवाणी **अप्राणा**=प्राणधारण न करती हुई—जड़ होती हुई भी **प्राणतीनां प्राणेन एति**-प्राणधारण करनेवाली प्रजाओं के प्राणों के साथ ही आती है। प्रभु मनुष्य को प्राणित करते हैं और उसे वेदज्ञान प्राप्त कराते हैं। यह **विराट्**-विशिष्ट दीप्तिवाली वेदवाणी सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञान देती हुई **पश्चात्**=पीछे **स्वराजम् अधि एति**=उस स्वयं देदीप्यमान् प्रभु की ओर प्राप्त होती है, सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञान द्वारा इन पदार्थों में प्रभु की महिमा का दर्शन कराती है। इसप्रकार यह हमें प्रभु को प्राप्त करानेवाली होती है। २. **एनाम्**=इस **विश्वं मृशन्तीम्**=सम्पूर्ण संसार के पदार्थों का विवेचन करती हुई **अभिरूपाम्**=कमनीय (सुन्दर) **विराजम्**-दीप्त वेदवाणी को **त्वे पश्यन्ति**-कई देखते हैं—**त्वे न पश्यन्ति**=कई नहीं देखते। सात्त्विक वृत्तिवाले पुरुष इस वेदवाणी के भाव को समझ पाते हैं। वृत्ति के तामस् व राजस् होने पर इसका दर्शन सम्भव नहीं होता।

भावार्थ—'अभिरूपा विराट्' (कमनीय दीप्त) वेदवाणी सब पदार्थों का ज्ञान देती हुई प्रभु की महिमा का प्रतिपादन करती है। इसे सात्त्विक वृत्तिवाले पुरुष ही देख पाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ब्रह्मा की पत्नी 'सरस्वती'

को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून्क उ कल्पमस्याः।
क्रमान्को अस्याः कतिधा विदुग्धान्को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः॥ १०॥

१. **कः**-कौन—कोई बिरला ही **विराजः**-इस विशिष्ट दीप्तिवाली वेदवाणी के **मिथुनत्वम्** प्रभु के साथ सम्पर्क को **प्रवेद**=जानता है। '**स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम्**'—इन शब्दों में प्रभु जीव से कहते हैं कि 'मैंने यह वेदवाणीरूप माता तेरे सामने प्रस्तुत कर दी है। यह तुझे प्रेरणा देनेवाली हो'। इसप्रकार यह स्पष्ट है कि प्रभु हमारे पिता हैं तो ये वेदवाणी हमारी माता है। **कः ऋतून्**-कोई बिरला ही इसके प्रकाश को (ऋतु-light, splendour) देख पाता है, **उ**-और **कः**-कोई ही **अस्याः कल्पम्**-इसके पवित्र निर्देशों (law, sacred precept) को समझता है। २. **कः** कोई विरल पुरुष ही **अस्याः**-इसके **क्रमात्**=सामर्थ्यों (power, strength) को जानता है, और यह भी कि **कतिधा विदुग्धान्**=कितने प्रकार से उन सामर्थ्यों का हममें प्रपूरण होता है। **कः** कोई विरला ही **अस्याः**=इस वेदवाणी के **धाम्**-तेज को जानता है कि **कतिधा व्युष्टीः**-कितने प्रकार से इसके द्वारा अन्धकारों का विनाश होता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे पिता हैं, वेदवाणी हमारी माता है। वेदवाणी का प्रकाश हमें पवित्र कर्त्तव्यकर्मों का निर्देश करता है। यह हमें शक्ति प्रदान करती है और हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

प्रथमा जनित्री वेदवाणी

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री॥ ११॥

१. **इयं एव सा**-यही वह वेदवाणी है (विराट् है), **या**-जो **प्रथमा**-सर्वप्रथम—सृष्टि के आरम्भ में **व्यौच्छत्**-सब अज्ञानान्धकार का विवासन (निराकरण) करती है। **आसु**-इन **इतरासु**-सृष्टि के प्रारम्भ के बाद तत्त्वद्रष्टाओं से प्रतिपाद्य ज्ञान की वाणियों में **प्रविष्टा**=प्रविष्ट हुई-हुई यह वेदवाणी ही **चराति**-गतिवाली होती है। इन तत्त्वद्रष्टा पुरुषों की स्मृतियाँ श्रुतिमूलक ही होती हैं। २. **अस्यां अन्तः**-इस वेदवाणी में **महान्तः महिमानः**=महान् दीप्तियाँ व शक्तियाँ (glory, might, power) हैं। **वधूः**-वहन (धारण) करने योग्य यह वेदवाणी **जिगाय**=सब शत्रुओं पर विजय करती है—अन्धकार को दूर करके राक्षसी वृत्तियों का विनाश करती है। **नवगत्**-यह उस स्तुत्य प्रभु की ओर हमें ले-चलनेवाली है और **जनित्री**-सब सद्गुणों का हममें प्रादुर्भाव करनेवाली है।

भावार्थ—यह श्रुति (वेदवाणी) ही सर्वप्रथम हमारे अज्ञान को दूर करती है। श्रुतिमूलक स्मृतियाँ ही प्रामाणिक होती हैं। यह श्रुति 'शक्ति व दीप्ति' से हमें परिपूर्ण करती है। यह हमारे शत्रुओं का विनाश करती हुई सद्गुणों को हममें भरती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

वेदवाणी को अपनानेवाली प्रजाएँ

छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा॥ १२॥

१. उल्लिखित वेदवाणी गायत्री आदि छन्दों में है। इन **छन्दःपक्षे**=(पक्ष परिग्रहे) छन्दों का परिग्रह करनेवाली पुरुष व स्त्रीरूप प्रजाएँ **उषसा**=(उष दाहे) अपने दोषों को दग्ध करनेवाली और **पेपिशाने**=अपने रूप को अति सुन्दर बनानेवाली होती हैं। ये प्रजाएँ उस **समानम्**=(सम आनयति) सम्यक् प्राणित करनेवाले **योनिम्**=सबके उत्पत्तिस्थान प्रभु की **अनु**=ओर **संचरेते**=सम्यक् गतिवाली होती हैं। २. ये प्रजाएँ **सूर्यपत्नी**=ज्ञानसूर्य का अपने अन्दर रक्षण करनेवाली, **प्रजानती**=प्रकृष्ट ज्ञानवाली, **केतुमती**=प्रशस्त बुद्धि-(intellect)-वाली **अजरे**=अजीर्ण शक्तिवाली व **भूरिरेतसा**=पालक व पोषक रेतःकणोंवाली होती हैं।

भावार्थ—वेदवाणी को अपनानेवालों के जीवन दग्धदोष व सुन्दर बनते हैं। ये प्रभु की ओर गतिवाले होते हैं। अपने अन्दर ज्ञानसूर्य का उदय करते हुए ये ज्ञानी, बुद्धिमान्, अजीर्ण व शक्तिशाली होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ऋतु+रेतस्

ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम्॥ १३॥

१. **ऋतस्य पन्थाम् अनु**=ऋत के (ठीक समय व ठीक स्थान पर कार्य करने के) मार्ग पर चलने के पश्चात् **तिस्रः**-(तिस्रो देवीर्मयो भुवः—'इडा सरस्वती मही') तीन कल्याणकर दिव्य भावनाएँ 'इडा, सरस्वती और मही (भारती)' **आगुः**-प्राप्त होती हैं। 'इडा' प्रभु स्तवन की वाणी है, 'सरस्वती' विद्या है तथा 'मही वा भारती' शरीर का उचित भरण है। इन देवियों का आराधन मनुष्य को वासनाओं के आक्रमण से बचाकर शरीर में रेतस् के रक्षण के योग्य बनाता है। **रेतः अनु**=रेतस् का रक्षण होने पर **त्रयः घर्माः**-तीन यज्ञ—देवपूजा, संगतिकरण व दान **आगुः**=मानव जीवन में प्राप्त होते हैं। २. **एका**=पूर्वोक्त तीन देवियों में से एक 'इडा'—प्रभु की स्तुतिवाणी **प्रजां जिन्वती**=प्रजा को उत्तम प्रेरणा (to impel) प्राप्त कराती है। घर में माता पिता को प्रभुस्तवन में प्रवृत्त देखकर सन्तानों को उत्तम प्रेरणा मिलती है। **एका**-एक 'सरस्वती' **ऊर्जं** (जिन्वती)-शरीर में बल व प्राणशक्ति का सञ्चार करती है। **एका**=एक 'मही'—शरीरों के उचित पोषण की वृत्तिवाले **देवयूनाम्**-दिव्य गुणों को अपने साथ जोड़ने की कामनावाले युवकों के सहारे **राष्ट्रं रक्षति**=राष्ट्र का रक्षण करती है। राष्ट्र के व्यक्तियों के स्वस्थ व त्यागशील (देवो दानात्) होने पर राष्ट्र कभी शत्रुओं से पराजित नहीं होता।

भावार्थ—हम वेदोपदिष्ट ऋत के मार्ग पर चलते हुए 'प्रभुस्तवन, ज्ञान व शक्ति सम्भरण' को प्राप्त हों। शरीर में शक्ति का रक्षण करते हुए 'देवपूजा, संगतिकरण व दान की वृत्ति' वाले बनें। परिणामतः 'उत्तम सन्तानोंवाले, उत्तम प्राणशक्तिवाले व उत्तम राष्ट्रवाले' हों।

ऋषि:—अथर्वा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—चतुष्पदाऽतिजगती ॥

तुरीया स्थिति

अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद्यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदर्कीं यजमानाय स्व ∫ राभरन्तीम्॥ १४॥

१. जीवन एक यज्ञ है। इस यज्ञ की उत्तमता के लिए 'अग्नि और सोम' दोनों ही तत्त्व आवश्यक हैं। केवल अग्नितत्त्व जीवन को जलाता है। केवल सोमतत्त्व जीवन को एकदम ठण्डा कर देता है। दोनों का मिश्रण ही जीवन को रसमय व नीरोग बनाता है (आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म) और तभी ब्रह्म की भी प्राप्ति होती है। इसलिए **ऋषयः** ऋषि लोग **अग्नीषोमौ**-अग्नि और सोमतत्त्वों को **यज्ञस्य पक्षौ**-जीवन यज्ञ के दो पक्षों के रूप में **कल्पयन्तः** बनाते हुए उस स्थिति को **अदधुः** धारण करते हैं, **या तुरीया आसीत्** जो चतुर्थी है। 'जागरित, स्वप्न व सुषुप्ति' से ऊपर उठकर समाधि की स्थिति 'तुरीया' है। अग्नि व सोम का सम्मिश्रण ऋषियों को इस स्थिति में पहुँचने के योग्य बनाता है। २. यह वह स्थिति है जो **गायत्रीम्** (गयाः प्राणाः तान्तत्रे) प्राणशक्ति का रक्षण करनेवाली है, **त्रिष्टुभम्** (त्रिष्टुभ्) काम, क्रोध व लोभ के आक्रमण को रोक (stop) देनेवाली है, **जगतीम्** लोकहित में प्रवृत्त करनेवाली है, **अनुष्टुभम्** प्रतिदिन प्रभुस्तवन की वृत्तिवाली है, **बृहद् अर्कीम्**-प्रभु की महती पूजा है, तथा **यजमानाय** अपने साथ 'अग्नि व सोम' का सङ्गतिकरण करनेवाले यजमान के लिए (यज् सङ्गतिकरणे) **स्वः आभरन्तीम्** प्रकाश व सुख को प्राप्त करानेवाली है।

भावार्थ—हमें जीवन में 'अग्नि व सोम' (विद्या व श्रद्धा, शक्ति व शान्ति, उग्रता व शीतलता) दोनों तत्त्वों का समन्वय करते हुए समाधि की स्थिति में पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए। यह स्थिति ही हमें प्रकाश व सुख प्राप्त कराएगी।

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

पञ्च

पञ्च व्यु ∫ ष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम्॥ १५॥

१. **पञ्च व्युष्टीः** (उष दाहे) **अनु** पाँच मलों के दहन के पश्चात्, अर्थात् पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के मल को दग्ध कर देने पर (प्राणायामैर्दहेद् दोषान्) **पञ्च दोहाः**-पाँचों ज्ञानों का हमारे जीवन में प्रपूरण होता है। निर्मल होकर ही ज्ञानेन्द्रियाँ अपने ज्ञान प्राप्ति के कार्य को समुचित प्रकार से करती हैं। **पञ्च नाम्नीम्**-(पचि विस्तारे) सर्वव्यापक प्रभु के नामवाली **गां अनु**-वाणी के पीछे **पञ्च ऋतवः** (ऋ गतौ) पाँचों कर्मेन्द्रियों के कार्य नियमित होते हैं—प्रभु-स्मरण के साथ समय पर पाँचों यज्ञ हमारे जीवन में स्थान पाते हैं। २. जिस समय ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति तथा कर्मेन्द्रियाँ यज्ञादि कर्मों को ठीक प्रकार से करती हैं, उस समय **पञ्चदशेन** (आत्मा पञ्चदशः—तां० १९।११।३) 'पाँच प्राणों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों व पाँच कर्मेन्द्रियों' के अधिष्ठाता जीव से **पञ्च दिशः क्लृप्ताः**-पाँचों दिशाएँ शक्तिशाली बनाई जाती हैं। यह उपासक 'प्राची, दक्षिणा, प्रतीची, उदीची व ध्रुवा' इन सब दिशाओं का अधिपति बनने का संकल्प करता है। **ताः** वे पाँचों दिशाएँ **एकमूर्धनीः**-एक ऊर्ध्वादिग्रूप शिखरवाली होती हुई—इस साधक को ऊर्ध्वादिक् का अधिपति 'बृहस्पति' बनाती हुई **एकं लोकं अभि** अद्वितीय प्रकाशमय ब्रह्मलोक की ओर ले जाती हैं।

भावार्थ—हम १. प्राणायाम द्वारा पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के मलों का दहन करें, २. पाँचों कर्मेन्द्रियों से प्रभुस्मरणपूर्वक उत्तम कर्मों को करनेवाले बनें, ३. 'प्राची, दक्षिणा, प्रतीची, उदीची

व ध्रुवा' इन पाँचों दिशाओं के अधिपति बनते हुए 'ऊर्ध्वा' दिक् की ओर बढ़ें। अन्ततः प्रकाशमय ब्रह्मलोक को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

षट्

षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य षडु सामानि षडहं वहन्ति।
षड्योगं सीरमनु सामसाम षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः॥ १६॥

१. **षट्**-छह **भूता**-(भू प्राप्तौ) ज्ञान प्राप्त करानेवाली पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा छठा मन **जाता**-प्रादुर्भूत हुए। ये छह **ऋतस्य**-ऋत के **प्रथमजा**-प्रथम प्रादुर्भाव हैं। प्रभु से ऋत का प्रादुर्भाव हुआ, ऋत से इन छह का प्रादुर्भाव हुआ अथवा प्रभु सत्यज्ञान का प्रथम प्रादुर्भाव करनेवाले हैं—सत्यज्ञान देनेवाले हैं। **उ**-और **षट्**-पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा छठा मन **सामानि**=(षोऽन्तकर्मणि) किसी भी वस्तु को समाप्ति तक ले जानेवाले हैं, अर्थात् क्रियाओं को पूर्ण करनेवाले हैं। ये ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ तथा मन **षट् अहम्**-(अह व्याप्तौ) इन छह में व्याप्तिवाले प्रभु को **वहन्ति**=प्राप्त कराती हैं। जिस समय बुद्धि के साथ ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन के साथ कर्मेन्द्रियाँ स्थिर हो जाती हैं तब ये प्रभु को प्राप्त कराती हैं, उसी को 'परमा गति' कहते हैं। २. (**सेरं ह्येतद् यत् सीरम्। इरामेवास्मिन्नेतद् दधाति**' श० ७।२।२।२) **सीरम्**-यह शरीर जब **षट् योगम्**-इन छह के योग-(वृत्तिनिरोध)-वाला हो जाता है, तब **अनु सामसाम**-उस समय शान्ति ही शान्ति होती है। जब ये विषयों में भटकते हैं तभी अशान्ति का कारण बनते हैं। वृत्ति के शान्त होने पर **द्यावापृथिवी**:=ये द्युलोक व पृथिवीलोक **षट् आहुः**-उस पाँच भूतों के अधिष्ठाता छठे प्रभु को कहते हैं—उसकी महिमा का प्रतिपादन करते हैं। **उर्वीः**=ये विशाल लोक लोकान्तर **षट्**=उस छठे प्रभु को ही कहते हैं—प्रभु की ही महिमा को दिखाते हैं।

भावार्थ—प्रभु ने पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ व बुद्धि को जन्म दिया, जिससे हम सत्यज्ञान प्राप्त कर सकें। प्रभु ने ही पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन को प्राप्त कराया, जिससे हम कर्मों को पूर्ण कर सकें। ये सब हमें उस प्रभु को प्राप्त करानेवाले होते हैं। जब ये विषयों में नहीं भटकते, तभी शान्ति होती है। उस समय ये द्यावापृथिवी तथा अन्य लोक लोकान्तर प्रभु की महिमा को ही दिखाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

शीतान्+उष्णान्

षडाहुः शीतान्षडु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः।
सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः॥ १७॥

१. प्रभु ने संसार में इस काल प्रवाह में जो ऋतुएँ बनाई हैं, उनमें **षट्**-छह **शीतान् मासः आहुः**-शीत मास कहाते हैं, **उ**=और **षट् उष्णान्** (आहुः)-छह गरमी के मास हैं। **ऋतुं नो ब्रूत**-उस ऋतु को हमें बतलाओ तो सही **यतमः अतिरिक्तः**=जो इनसे अतिरिक्त है। वास्तव में मूल तत्त्व दो ही हैं 'सरदी और गरमी'। मानव स्वभाव में ये ही 'आपः, ज्योतिः' कहलाते हैं। इन्हीं को यहाँ (९.१४) 'अग्नीषोमौ' शब्द से कहा है। मनुष्य इन दोनों तत्त्वों को धारण करता है तभी इनके समन्वय में उसका जीवन पूर्ण बनता है। २. इस पूर्ण-से जीवन में **सप्त**-सात **सुपर्णाः** (**कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्**)='दो कान, दो नासा-छिद्र, दो आँखें व मुख' रूप सात सुपर्ण-उत्तमता से पालन करनेवाली इन्द्रियाँ **कवयः**=(कुवन्ति सर्वाः विद्याः) सब विद्याओं का ज्ञान देती हुई **निषेदुः**=शिरोदेश में निषण्ण होती हैं। (कः सप्त खानि विततर्द शीर्षणि)—इन **सप्त छन्दांसि अनु**-पापों से बचानेवाली (छादयन्ति) इन्द्रियों के अनुसार **सप्त**

दीक्षा:-हम जीवनों में सात इन्द्रियों से सात व्रत ग्रहण करते हैं। इसप्रकार हम पुण्यकर्मों को ही करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—हम जीवन में अग्नि व सोमतत्त्व का समन्वय करें (गरमी+सरदी)। तब हमारी सातों ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान देती हुई हमें पापों से बचाएँगी और जीवन को व्रतमय बनाएँगी।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सप्त आज्यानि व सप्त गृध्राः

सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त।

सप्ताज्यानि परि भूतमायन्ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम्॥ १८॥

१. '**सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे**' शरीर में सात ऋषि रक्खे गये हैं। इन ऋषियों के द्वारा इस जीवन में **सप्त होमाः**-सात होम सदा चलते हैं '**येन यज्ञस्तायते सप्तहोता**'। इन यज्ञों से उत्पन्न होनेवाली **समिधः**=दीप्तियाँ भी **ह**-निश्चय से **सप्त**-सात हैं। इन दीप्तियों के साथ **मधूनि सप्त**-सात माधुर्यों की जीवन में उत्पत्ति होती है और **ऋतवः ह सप्त**-सात ही नियमित गतियाँ (ऋ गतौ) होती हैं। २. वस्तुतः **सप्त आज्यानि**=सात जीवन को अलंकृत व दीप्त बनाने के साधन **भूतं परि आयन्**-प्राणि को प्राप्त हुए हैं। **ताः**=वे ही **सप्त गृध्राः**=सात गिद्ध हो जाते हैं, **इति वयं शुश्रुमः**-ऐसा हमने सुना है। प्रभु ने दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखें व मुखरूप सात ऋषि हमारे शरीर में रक्खे हैं। ये सात ऋषि हैं। ये ज्ञान का ग्रहण करते हुए जीवन को अलंकृत कर देते हैं, परन्तु जब हम विषयों से आकृष्ट होकर विषयों की ओर चले जाते हैं तब ये 'सात गृध्र' हो जाते हैं। जीवन को अलंकृत करने के स्थान में विषय-पङ्क से उसे मलिन कर डालते हैं।

भावार्थ—प्रभु की व्यवस्था से 'कानों, नासिका छिद्रों, आँखों व मन' द्वारा जीवन में सात होम चलते हैं। इनके द्वारा जीवन 'दीप्त, मधुर व नियमित गति' वाला बनता है। ये सात जीवन को दीप्त करने के साधन विषयाकृष्ट होकर 'सप्त गृध्र' बन जाते हैं—विषय-तृष्णा से बद्ध होकर ये जीवन को मलिन कर देते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अन्तःकरण व बहिरिन्द्रियाँ

सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि।

कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि॥ १९॥

१. 'प्राणा छन्दांसि' कौ० ११.८ तथा 'प्राणा वै स्तोमाः' शत० ८.४.१.३ के अनुसार प्राणों को वैदिक साहित्य में 'छन्दस् व स्तोम' कहा गया है। ये कान आदि सप्त ऋषि मनुष्य को छादित (सुरक्षित) करने के व प्रभुस्तवन के साधन बनते हैं। **सप्त छन्दांसि**=सात छन्द 'शीर्षण्य प्राण' तो शरीर में हैं ही, **चतुः उत्तराणि**='मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार' इनसे ऊपर हैं। ये बहिरिन्द्रिय हैं, तो वे अन्तरिन्द्रिय। वस्तुतः ये **अन्यः अन्यस्मिन् अधि आर्पितानि**-एक-दूसरे में अर्पित हैं—एक-दूसरे से मिलकर ही ये कार्य करते हैं। २. प्रभु ने शरीर में यह भी एक अद्भुत व्यवस्था की है कि **कथम्**-किस अद्भुत प्रकार से **स्तोमाः**=प्राण **तेषु**=उन 'मन, बुद्धि' आदि में **प्रतितिष्ठन्ति**-प्रतिष्ठित हैं और **तानि**-वे 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार' भी **कथम्**-कैसे **स्तोमेषु**-उन प्राणों पर **आर्पितानि**=सर्वथा आश्रित हैं।

भावार्थ—प्रभु ने शरीर में कान आदि सात स्तोमों व छन्दों को स्थापित किया है तथा मन, बुद्धि आदि रूप अन्तःकरण चतुष्टय की स्थापना की है। ये शरीर में अन्योन्याश्रित-से हैं। एक-दूसरे से मिलकर ही ये अपना कार्य कर पाते हैं। यदि अन्तःकरण के बिना बहिरिन्द्रियों का

कार्य नहीं चलता तो बहिरिन्द्रियों के बिना अन्तःकरण भी व्यर्थ-सा हो जाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्

कथं गायत्री त्रिवृतं व्या ऽऽप कथं त्रिष्टुप्पञ्चदशेनं कल्पते।
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप्कथमेकविंशः॥ २०॥

१. **कथम्**-किस अद्भुत प्रकार से **गायत्री**=(गयाः प्राणाः, तान् तत्रे) प्राणों का रक्षण **त्रिवृतं व्याप**-(त्रिषु ज्ञानकर्मोपासनेषु वर्तते) ज्ञान, कर्म व उपासना में प्रवृत्त पुरुष को व्याप्त करता है। जो भी ज्ञान, कर्म व उपासना में प्रवृत्त होगा, वह प्राणशक्ति का रक्षण कर पाएगा। **कथम्**=किस अद्भुत प्रकार से **त्रिष्टुप्**-काम, क्रोध, लोभ का निरोध (त्रि+ष्टुप्) **पञ्चदशेन कल्पते**=(आत्मा पञ्चदशः तां० १९।११।३) आत्मा को सामर्थ्यवाला बनाता है। वस्तुतः 'काम, क्रोध, लोभ' का निरोध ही आत्मा को शक्तिशाली बनाता है। २. **त्रयस्त्रिंशेन**=तेतीस देवों को अपने में स्थापित करनेवाले साधक से **कथम्**-कैसे अद्भुत रूप में **जगती**=लोकहित का कार्य होता है, और **अनुष्टुप्**=प्रतिदिन प्रभुस्तवन करनेवाला **कथम्**=कैसे **एकविंशः**='पाँच भूत, पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय तथा इक्कीसवें सशक्त मन' वाला होता है। स्तोता के ये इक्कीस के-इक्कीस तत्त्व बड़े ठीक रहते हैं, अतएव वह पूर्ण स्वस्थ होता है।

भावार्थ—'ज्ञान, कर्म व उपासन' में प्रवृत्त होकर हम प्राणों का रक्षण करें; काम, क्रोध, लोभ का निरोध करके आत्मा को प्रबल बनाएँ; अपने में दिव्य गुणों को धारण करके लोकहित में प्रवृत्त हों तथा प्रभुस्तवन करते हुए हम जीवन के धारक इक्कीस तत्त्वों को अपने में ठीक रक्खें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अष्ट

अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रर्त्विजो दैव्या ये।
अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति॥ २१॥

१. '**भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥**' के अनुसार **अष्ट भूता जाता**=आठ पदार्थ प्रकट हुए। ये **ऋतस्य प्रथमजा**=ऋत के प्रथम प्रादुर्भाव थे। प्रभु के दीप्त तप से ऋत का प्रादुर्भाव हुआ। ऋत से 'पञ्चभूतों, मन, बुद्धि व अहंकार' इन आठ का प्रादुर्भाव हुआ। हे **इन्द्र**-जितेन्द्रिय पुरुष! ये **अष्ट**-आठ वे हैं **ये**=जो **दैव्याः ऋत्विजः**=उस देव प्रभु के द्वारा जीवन-यज्ञ को चलाने के लिए उत्पादित किये गये हैं। 'पञ्चभूतों, मन, बुद्धि व अहंकार' को जीवन-यज्ञ के ऋत्विजों के रूप में देखने से जीवन कितना पवित्र बनता है! २. वस्तुतः यह **अदितिः**-अविनाशी प्रकृति **अष्टयोनिः**=इन आठ का घर है। ये आठों ऋत्विज् इस प्रकृतिरूप घर में ही रहते हैं। इसी से यह प्रकृति **अष्टपुत्रः**-इन आठ पुत्रोंवाली कहलाती है। '**रात्रिर्वै संयच्छन्दः**' य० १५।५ के अनुसार रात्रि संयच्छन्द है—संयम की प्रबल अभिलाषा से जब मनुष्य पृथिवी आदि का संयम करते हुए अन्ततः **अष्टमीं रात्रिम्**=अहंकार का आठवें स्थान में संयम करता है तब वह **हव्यं अभि एति**=उस अर्पणीय प्रभु को प्राप्त होता है। अहंकार का विजय करके ही हम प्रभु को प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद २६.१ में '**अष्टमी भूतसाधनी**' ऐसा कहा है। यह अष्टमी जीवों को सिद्धि प्राप्त करानेवाली है।

भावार्थ—प्रभु ने ऋत का प्रादुर्भाव करके 'पञ्चभूतों, मन, बुद्धि व अहंकार' इन आठ का प्रादुर्भाव किया। ये आठ ही जीवन-यज्ञ के ऋत्विज् हैं। प्रकृति इन्हीं आठ पुत्रोंवाली है। मनुष्य एक एक करके जब आठवें स्थान पर अहंकार पर भी विजय प्राप्त कर लेता है, तब

प्रभु को प्राप्त होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

समानजन्मा 'क्रतु'

इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा।
समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन्॥ २२॥

१. विराट् प्रभु कहते हैं कि **इत्थं श्रेयः मन्यमाना** 'इसप्रकार कल्याण है', ऐसा मानता हुआ मैं **इदं आगमम्**-तुम्हारे जीवन-यज्ञ में आया हूँ। जब प्रभु उपस्थित रहते हैं, अर्थात् जब तक हम प्रभु को भूलते नहीं, तब तक जीवन पवित्र बना रहता है और अकल्याण का प्रसंग उपस्थित नहीं होता। **युष्माकं सख्ये** तुम्हारी मित्रता में **अहं शेवा अस्मि**-मैं कल्याणकर हूँ। जब जीव प्रभु का मित्र बन जाता है तब प्रभु उसका कल्याण करते ही हैं। २. प्रभु कहते हैं कि यह **वः** तुम्हारे **समानजन्मा** जन्म के साथ ही उत्पन्न हुआ हुआ **क्रतुः**-यज्ञ **शिवः अस्ति** कल्याणकर है 'सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा' प्रभु ने प्रजाओं को यज्ञ के साथ ही उत्पन्न किया है। ये यज्ञ 'कामधुक्' है, सब इष्ट कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है। **सः**-वह यज्ञ **वः सर्वाः** तुम सबका **प्रजानन्**-ध्यान करता हुआ **संचरति**-गतिवाला होता है। यह यज्ञ जीवनों को स्वर्गमय बना देता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे जीवन-यज्ञ में उपस्थित रहते हैं तो कल्याण ही-कल्याण होता है। प्रभु ने इस यज्ञ को हमारे साथ ही उत्पन्न किया है। यह यज्ञ हमारा कल्याण करता है और हम सबका पालन करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

इन्द्र, यम, ऋषि

अष्टेन्द्रस्य षड्यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा।
अपो मनुष्या३नोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे॥ २३॥

१. **इन्द्रस्य अष्ट**-जितेन्द्रिय पुरुष के 'शरीर के उपादानभूत पाँचों भूतांशों तथा 'मन, बुद्धि व अहंकार' को **यमस्य षट्** संयत जीवनवाले पुरुष के पाँचों ज्ञानेन्द्रियों व मन को, **ऋषीणाम्** (ऋष् to kill) वासनाओं का संहार करनेवाले पुरुषों के **सप्तधा सप्त**-सात सात प्रकार से विभक्त होकर कार्य करनेवाले, अर्थात् उनचास मरुतों (प्राणों) को **पञ्च अनुसेचिरे**-पाँचों तत्त्व (पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश) अनुकूला से समवेत होते हैं, परिणामतः इन्द्र के आठ, यम के छह तथा ऋषियों के ये उनचास पदार्थ ठीक बने रहते हैं, अपना अपना कार्य ठीक प्रकार से करते हैं। २. **उ** और **अपः मनुष्यान् ओषधीः**-उन मनुष्यों को जिनमें कि एक ओर जल हैं (अपः) और दूसरी ओर ओषधियाँ, **तान्**-उन्हें **उ**-भी ये पाँच अनुकूलता से सेवन करनेवाले होते हैं। मनुष्य का खान-पान यदि जल व ओषधियाँ ही रहें तो पाँचों तत्त्वों के ठीक रहने से उसका स्वास्थ्य ठीक बना रहता है। यहाँ वेद ने मनुष्य को बड़ी सुन्दरता से संकेत किया है कि जल तेरे दक्षिण हस्त में हो तो ओषधियाँ वाम हस्त में, अर्थात् तुझे पानी पीना है और वानस्पतिक भोजन का ही सेवन करना है। अन्यत्र यही भाव '**पयः पशूनां रसमोषधीनाम्**' इन शब्दों में व्यक्त किया गया है कि तुझे पशुओं का दूध ही लेना है, मांस नहीं।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय (इन्द्र), नियन्त्रित जीवनवाले (यम) व वासनाओं का संहार करनेवाले (ऋषि) बनें। जलों व ओषधियों से ही शरीर का पोषण करें, मांस से नहीं। ऐसा होने पर हमें पञ्चभूतों की अनुकूलता से पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होगा।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

देव, मनुष्य, असुर, ऋषि

केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना।
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान्मनुष्याँ३ असुरानुत ऋषीन्॥ २४॥

१. वेदवाणी 'केवली' है (के+वल्) आनन्दमय प्रभु में विचरण करनेवाली है। यह **इन्द्राय दुदुहे**-जितेन्द्रिय पुरुष के लिए दुही जाती है। **हि**=निश्चय से **गृष्टिः**=यह वेदवाणीरूप सकृत् प्रसूता गौ—सृष्टि के प्रारम्भ में जिसका एक बार ही ज्ञान दे दिया जाता है, वह वेदधेनु **वशम्** कमनीय—चाहने योग्य, **प्रथमम्**-सर्वोत्कृष्ट व विस्तृत **पीयूषम्**=ज्ञानामृत का **दुहाना**=प्रपूरण करती है। २. **अथ**-अब यह **देवान् मनुष्यान् असुरान् उत ऋषीन्**-देव, मनुष्य, असुर और ऋषि इन **चतुः**-चारों को **चतुर्धा अतर्पयत्**=चार प्रकार से तृप्त करती है। ब्रह्मचर्याश्रम में विचरनेवाले—ज्ञान की स्पर्धा में एक-दूसरे से आगे बढ़ने की भावनावाले विजिगीषु (दिव् विजिगीषायाम्) ब्रह्मचारियों को प्रकृतिज्ञान (ऋग्वेद द्वारा) देती हुई प्रीणित करती है। गृहस्थ में मननपूर्वक कर्म करनेवाले मनुष्यों को (यजुर्वेद के द्वारा) कर्त्तव्य-कर्मों का उपदेश देती हुई तृप्त करती है। अब प्राणसाधना में प्रवृत्त (असुषु रमन्ते) वानप्रस्थों को (सामवेद द्वारा) प्रभु के उपासन में प्रवृत्त करती हुई आनन्दित करती है तथा अन्ततः सब वासनाओं का संहार करनेवाले ऋषिभूत संन्यासियों को यह ब्रह्मवेद (अथर्ववेद) के द्वारा ब्रह्म के समीप प्राप्त कराती है, तब यह संन्यस्त वाचस्पति बनकर नीरोग व निर्द्वन्द्व बनता है—लोगों को भी यह ऐसा बनने का ही उपदेश करता है।

भावार्थ—प्रभु के द्वारा सृष्टि के आरम्भ में जिसका ज्ञान दिया गया है, वह वेदवाणी हमें 'कमनीय, व्यापक, अमृतमय' ज्ञान प्राप्त कराती है। यह हमें 'देव, मनुष्य, असुर (प्राणसाधक) व ऋषि' बनाती हुई सफल जीवनवाला करती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'एकवृत्' यक्ष

को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः॥ २५॥
एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते॥ २६॥

१. **कः**=कौन **नु**-निश्चय से **गौः** संसार शकट का खेंचनेवाल बैल (अनड्वान्) है? **कः**-कौन **एकः**=अद्वितीय **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा है, **उ**-और **किं धाम**-कौन तेज है? **काः आशिषः**=(आशास् to order, to command) कौन-सी शासक शक्तियाँ हैं। **पृथिव्याम्**=इस पृथिवी पर **यक्षम्**-सबका संगतिकरण करनेवाला—सब पदार्थों को एक सूत्र में पिरोनेवाला **एकवृत्** अकेला ही होनेवाला **एकर्तुः**-अकेला ही गति देनेवाला (ऋ गतौ), **सः**=वह **कतमः नु**-निश्चय ये कौन सा है? २. उत्तर देते हुए कहते हैं कि—**एकः गौः** वह संसार शकट का वहन करनेवाला अनड्वान्=अद्वितीय प्रभु ही है। **एकः एकऋषिः**=वही अद्वितीय तत्त्वद्रष्टा है। **एकं धाम**=वही अद्वितीय तेज है। **एकधा आशिषः**=एक प्रकार की ही शासक शक्ति है—भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न शासक शक्तियाँ नहीं हैं। **पृथिव्याम्**-इस पृथिवी पर **यक्षम्**-पूज्य, सब लोकों का संगतिकरण करनेवाला **एकवृत्**=एक ही है, **एकर्तुः**-वह एक ही गति देनेवाला है। **न अतिरिच्यते**-उससे बढ़कर कोई नहीं है।

भावार्थ—प्रभु इस संसार शकट का वहन कर रहे हैं। वे तत्त्वद्रष्टा हैं, तेजःपुञ्ज हैं, एकमात्र शासक हैं। वे सब लोक लोकान्तरों का संगतिकरण करनेवाले प्रभु एक ही हैं। वे ही सारे ब्रह्माण्ड को गति दे रहे हैं। उनसे बढ़कर कोई नहीं है।

इसप्रकार प्रभु से शासित संसार को देखनेवाला यह ज्ञानी मानव समाज में भी शासन-व्यवस्था लाने का चिन्तन करता है। इसका उपदेश देनेवाला यह आचार्य स्वयं स्थिर वृत्तिवाला होने से 'अथर्वा' बनता है। यह 'अथर्वाचार्य' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

१०. [दशमं सूक्तम्, प्रथमः पर्यायः]

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**१ आर्चीपङ्क्तिः, २ याजुषीजगती, ३ साम्न्यनुष्टुप्** ॥

विराट् से गार्हपत्य में

विराड् वा इदमग्र आसीत्तस्या जातायाः। सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥ १ ॥
सोदक्रामत्सा गार्हपत्ये न्य क्रामत् ॥ २ ॥ गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

१. यहाँ काव्यमय भाषा में शासन व्यवस्था के विकास का सुन्दर वर्णन हुआ है। **अग्रे**-पहले **वै** निश्चय से **इदम्** यह **विराट्**-(वि राट्) राजा से रहित स्थिति **आसीत्**-थी। कोई शासक न था। **तस्याः जातायाः**-उस प्रादुर्भूत हुई-हुई अराजकता की स्थिति से **सर्वं अबिभेत्**-सभी भयभीत हो उठे कि **इयं एव**-यह विराट् अवस्था ही **इदं भविष्यति**-इस जगत् को प्राप्त होगी (भू प्राप्तौ) **इति**-क्या इसी प्रकार यह सब रहेगा? २. इसप्रकार सबके भयभीत होने पर सबमें विचार उठा। एक घर में परिवार के व्यक्तियों ने मिलकर सोचा कि क्या करना चाहिए? परिणामतः **सा**-वह विराट् अवस्था **उदक्रामत्**-उत्क्रान्त हुई। उसमें कुछ सुधार हुआ और प्रत्येक घर में एक व्यक्ति प्रमुख बनाया गया। इसप्रकार **सा**-विराट् अवस्था उत्क्रान्त होकर **गार्हपत्ये न्यक्रामत्**-गार्हपत्य में आकर स्थित हुई। प्रत्येक घर में गृहपति का शासन स्थापित हो गया। घर में अराजकता का लोप हो गया। **यः एवं वेद**-जो इसप्रकार गार्हपत्य व्यवस्था के महत्त्व को समझ लेता है, वह **गृहमेधी भवति**-गृहस्थ यज्ञ को सुन्दरता से चलानेवाला होता है, **गृहपतिः भवति**-गृहपति बनता है—अराजकता पैदा न होने देकर घर का रक्षण करता है।

भावार्थ—विराट् (अराजकता) की स्थिति सबको भयंकर प्रतीत हुई, अतः लोगों ने विचार कर प्रत्येक घर में एक को मुखिया नियत किया। यही 'गार्हपत्य' कहलायी। इससे घर में अराजकता का लोप होकर शान्ति की स्थिति उत्पन्न हुई।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**४ याजुषी जगती, ५ आर्च्यनुष्टुप्** ॥

आहवनीय (ग्रामपंचायत)

सोदक्रामत्साहवनीये न्य क्रामत् ॥ ४ ॥
यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥

१. गार्हपत्य व्यवस्था हो जाने पर प्रत्येक घर में तो शान्ति स्थापित हो गई, 'परन्तु यदि दो घरों में परस्पर कोई संघर्ष उपस्थित हो जाए तो उसके लिए क्या किया जाए', इस विचार के उपस्थित होने पर **सा उदक्रामत्**-विराट् व्यवस्था में और उन्नति हुई और **सा**-वह विराट् **आहवनीये न्यक्रामत्**-आहवनीय में विश्रान्त हुई। घरों के प्रतिनिधियों की एक सभा बनी। यह आहवनीय कहलायी, जिसमें प्रतिनिधि आहूत होते हैं। २. इस आहवनीय का भी एक मुखिया बना, वही 'ग्राम-प्रधान' कहलाया। **अस्य देवहूतिं देवाः यन्ति**-इस प्रधान की सभा के ज्ञानी

प्रतिनिधियों (देवों की पुकार होने) पर वे देवसभा में जाते हैं। 'आहवनीय' में वे सब देव उपस्थित होते हैं। उसमें घरों के पारस्परिक कलह को सुनकर वे उसका उचित निर्णय करते हैं। इसप्रकार घरों में परस्पर मेल बना रहता है। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार आहवनीय के महत्त्व को समझ लेता है, वह **देवानाम् प्रियः भवति**=ज्ञानी प्रतिनिधियों का प्रिय होता है।

भावार्थ—घरों के पारस्परिक कलहों को समाप्त करने के लिए एक ग्रामसभा बनी। यही 'आहवनीय' कहलायी। ऐसे कलहों के पैदा होने पर प्रधान की पुकार पर सब देव (ज्ञानी प्रतिनिधि) उपस्थित होते हैं और सब पक्षों को सुनकर उचित निर्णय करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**६ याजुषीजगती, ७ विराड्गायत्री** ॥

दक्षिणाग्नि

सोद॑क्रामत्सा द॑क्षिणाग्नौ न्य ि क्रामत्॥ ६ ॥

य॒ज्ञर्तो॑ दक्षि॒णीयो॒ वास॑तेयो भवति य ए॒वं वेद॑॥ ७ ॥

१. अब एक ग्राम के घरों में तो अराजकता की स्थिति समाप्त हो गई, 'परन्तु दो ग्रामों में कोई संघर्ष उपस्थित हो जाने पर क्या किया जाए', यह समस्या विचारणीय हो गई। परिणामतः **सा उदक्रामत्**=वह विराट् अवस्था और उत्क्रान्त हुई तथा **सा**-वह **दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत्**-दक्षिणाग्नि में स्थित हुई। प्रत्येक ग्राम का दक्षिण (कुशल) अग्नि (नेता) इस सभा में उपस्थित होता है। इससे सभा का नाम ही दक्षिणाग्नि हो गया है। २. **यः एवं वेद**-जो इस 'दक्षिणाग्नि' संगठन के महत्त्व को समझ लेता है वह **यज्ञऋतः**-संगठन में गतिवाला, **दक्षिणीयः**-(दक्षिण fame) यशस्वी व **वासतेयः**=लोगों को उत्तमता से बसानेवाला **भवति**=होता है। साथ ही 'दक्षिणाग्नि' के सभ्यों को कुछ दक्षिणा भी दी जाती है तथा निवासस्थान भी दिया जाता है। ये दक्षिणाग्नि के सभ्य दक्षिणीय व वासतेय हैं। इन्हें अपने ग्राम से दूर आना पड़ता है, अतः यह व्यवस्था आवश्यक हो जाती है।

भावार्थ—ग्रामों के पारस्परिक कलहों को निपटाने के लिए ग्रामों के कुशल नेताओं की जो सभा बनती है, वह 'दक्षिणाग्नि' कहलाती है। जो कुशल नेता इस संगठन में उपस्थित होते हैं, वे 'दक्षिणीय व वासतेय' होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**८ याजुषिजगती, ९ साम्न्यनुष्टुप्** ॥

सभा

सोद॑क्रामत्सा स॒भायां॒ न्य ि क्रामत्॥ ८ ॥

यन्त्य॑स्य स॒भां सभ्यो॑ भवति य ए॒वं वेद॑॥ ९ ॥

१. 'दक्षिणाग्नि' के बन जाने पर एक प्रान्त के ग्रामों के कलह ठीक रूप से निर्णीत हो जाते हैं, 'परन्तु यदि प्रान्तों की कोई समस्या परस्पर उठ खड़ी हो तो क्या करें'? वह विचार उपस्थित होने पर **सा उदक्रामत्**-वह विराट् अवस्था और उत्क्रान्त हुई, और **सा सभायां न्यक्रामत्**-वह सभा में आकर स्थित हुई। प्रत्येक प्रान्त की दक्षिणाग्नि के प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित होते हैं। इसमें वे 'सह भान्ति यस्याम्'—मिलकर शोभायमान होते हैं। **यः एवं वेद**=जो इस सभा के महत्त्व को समझ लेता है, वह इस सभा का प्रमुख सदस्य बनता है और **अस्य सभां यन्ति**-इस प्रमुख का सभा में सब दक्षिणाग्नियों के प्रतिनिधि उपस्थित होते हैं। यह सभाप्रधान उन सब प्रतिनिधियों के प्रति **सभ्यः भवति**-अत्यन्त सभ्य व्यवहारवाला होता है। इसप्रकार प्रान्तों के परस्पर कलह सुलझ जाते हैं और देश में शान्ति बनी रहती है।

भावार्थ—प्रान्तों के पारस्परिक कलहों को निपटाने के लिए जो संगठन बनता है, वह 'सभा' कहलाती है। इसका प्रधान सब प्रतिनिधियों से सभ्यतापूर्वक वर्तता हुआ सबके साथ प्रेम बढ़ानेवाला होता है।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**१० याजुषीजगती, ११ साम्नीबृहती** ॥

समिति

सोदक्रामत्सा समितौ न्य क्रामत्॥ १०॥

यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद॥ ११॥

१. 'अब एक महाद्वीप के देशों में यदि परस्पर कोई कलह उपस्थित हो जाए तो क्या हो', यह विचार उपस्थित होने पर **सा उदक्रामत्**-वह विराट् अवस्था और उत्क्रान्त हुई और **सा समितौ न्यक्रामत्**-वह समिति में विश्रान्त हुई। एक महाद्वीप के देशों के प्रतिनिधियों की यह सभा समिति कहलायी—जिसमें विविध देशों के प्रतिनिधियों का 'सम् इति' मिलकर गमन होता है। २. **यः एवं वेद**-जो इस समिति के महत्त्व को समझता है और लोगों को इसके महत्त्व को समझाता है वह **सामित्यः भवति**-(समितौ साधुः आदरणीयः) समिति में उत्तम होता है और इसके पुकारने पर सब सभ्य **समितिं यन्ति**-समिति में उपस्थित होते हैं। ये समिति के सदस्य देशों के पारस्परिक संघर्षों को पनपने नहीं देते।

भावार्थ—देशों के प्रतिनिधियों की सभा 'समिति' कहलाती है, इसका प्रधान 'सामित्य' कहा जाता है। इसकी अध्यक्षता में समिति के सदस्य देशों के कलहों को दूर करने का यत्न करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**१२ याजुषीजगती, १३ विराड्गायत्री** ॥

आमन्त्रण (U.N.O.)

सोदक्रामत्सामन्त्रणे न्य क्रामत्॥ १२॥

यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद॥ १३॥

१. 'यदि महाद्वीपों का कलह उपस्थित हो जाए तो क्या करें', यह विचार उपस्थित होने पर **सा उदक्रामत्**-वह विराट् अवस्था और उत्क्रान्त हुई और **सा आमन्त्रणे न्यक्रामत्** वह 'आमन्त्रण' में आकर विश्रान्त हुई। यह इस पृथिवी पर सबसे बड़ा संगठन है। इसमें सब महाद्वीपों से प्रतिनिधि आमन्त्रित होते हैं और वे मिलकर समस्याओं को सुलझाने का यत्न करते हैं। २. **यः एवं वेद** जो इसप्रकार इस आमन्त्रण के बनाने की बात को समझता है, वही **आमन्त्रणीयः भवति** इस आमन्त्रण का प्रधान बनने के योग्य समझा जाता है और सब सदस्य **अस्य** इसके पुकारने पर **आमन्त्रणं यन्ति** 'आमन्त्रण' में जाते हैं—आमन्त्रण में उपस्थित होकर गम्भीर विषयों पर अपना अपना विचार देने का प्रयत्न करते हैं। यह आमन्त्रण ही 'विश्वशान्ति' का साधन बनता है। यह मानवजाति का सर्वोत्तम संगठन है। इसके होने पर भी कुछ न कुछ विराट् अवस्था रह ही जाती है। विराट् अवस्था ही तो उत्क्रान्त होकर यहाँ तक पहुँची है। मनुष्य की सहज अपूर्णता संगठन की अपूर्णता का कारण होगी ही।

भावार्थ—'आमन्त्रण' वह संगठन है, जो महाद्वीपों के पारस्परिक कलहों को निपटाकर मनुष्यों को युद्धों की स्थिति से ऊपर उठाता है। युद्धों के अभाव में ही वास्तविक उन्नति सम्भव है।

१०. [दशमं सूक्तम्, द्वितीयः पर्यायः]

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**१ त्रिपदासाम्न्यनुष्टुप्, २ उष्णिग्गर्भा चतुष्पदोपरिष्टाद्विराड्बृहती, ३ एकपदायाजुषीगायत्री, ४ एकपदासाम्नीपङ्क्तिः** ॥

ऊर्क्, स्वधा, सूनृता, इरावती

सोदक्रामत्साऽन्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्ताऽतिष्ठत्॥ १ ॥

तां देवमनुष्या ∫ अब्रुवन्नियमेव तद्वेद यदुभयं
उपजीवेमेमामुप ह्वयामहा इति॥ २ ॥

तामुपाह्वयन्त॥ ३ ॥

ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति॥ ४ ॥

१. विराट् अवस्था उत्क्रान्त होकर, 'आमन्त्रण' तक पहुँचकर, सचमुच '**विराट्**'-'विशिष्ट दीप्तिवाली' हो जाती है। **सा**=वह विराट् **उदक्रामत्**=उत्क्रान्त हुई और उन्नत होकर **सा**=वह **अन्तरिक्षे**=अन्तरिक्ष में **चतुर्धा**=चार प्रकार से **विक्रान्ता अतिष्ठत्**=विक्रमवाली होकर ठहरी, अर्थात् विशिष्ट दीप्तिवाली शासन-व्यवस्था होने पर सारे वातावरण में चार बातों का दर्शन हुआ, तब **ताम्**-उस विराट् को **देवमनुष्याः अब्रुवन्**-देव और मनुष्य, अर्थात् विद्वान् और सामान्य लोग बोले कि **इयम् एव**=यह विराट् ही **तत् वेद**=उस बात को प्राप्त कराती है, **यत् उभये उपजीवेम**-जिसके आधार से हम दोनों जीते हैं, अतः **इमाम् उपह्वयामहे इति**=इस विराट् को हम पुकारते हैं। ज्ञानी व सामान्य लोग अनुभव करते हैं कि यह विराट्—विशिष्ट दीप्तिवाली राष्ट्र-व्यवस्था हमारे जीवनों के लिए आवश्यक पदार्थों को प्राप्त कराती है, अतः देव-मनुष्यों ने **ताम् उपाह्वयन्त**=उस विराट् को पुकारा। हे **ऊर्जे**=बल व प्राणशक्ति देनेवाली विराट्! **एहि**-तू हमें प्राप्त हो। **स्वधे**=आत्मधारण-शक्तिवाली विराट्! **एहि**=तू आ। **सुनृते**-हे प्रिय, सत्यवाणि! तू **एहि**=आ और **इरावति**=अन्नवाली विराट्! **एहि इति**=आओ ही।

भावार्थ—उत्क्रान्त विराट् स्थिति होने पर देव व मनुष्य अनुभव करते हैं कि अब हम 'बल व प्राणशक्ति सम्पन्न बन पाएँगे, आत्मधारण के सामर्थ्यवाले होंगे, सर्वत्र प्रिय, सत्यवाणी का श्रवण होगा और सबके लिए अन्न सुलभ होगा'।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**५ विराड्गायत्री, ६ आर्च्यनुष्टुप्** ॥

विराट् रूप कामधेनु

तस्या इन्द्रो वत्स आसीद्गायत्र्य ∫ भिधान्यभ्रमूधः॥ ५ ॥

बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ॥ ६ ॥

१. उल्लिखित विराट् को—विशिष्ट दीप्तिवाली शासन-व्यवस्था को कामधेनु के रूप में चित्रित करते हुए कहते हैं कि—**तस्याः**-उस विराट्रूप कामधेनु का **इन्द्रः वत्सः आसीत्**-एक जितेन्द्रिय पुरुष वत्स (बछड़ा) है अथवा प्रिय पुत्र है। इस कामधेनु की **गायत्री अभिधानी**=गान करनेवाले का त्राण करनेवाली (गायन्तं त्रायते) यह वेदवाणी बन्धन रज्जु है। **अभ्रम् ऊधः**=इस विराट्रूप कामधेनु का मेघ ही दुग्धाशय है। जहाँ विराट् होती है, वहाँ पुरुष जितेन्द्रिय होते हैं, वेदविद्या का गान करते हुए वे अपना त्राण करते हैं, उस राष्ट्र में मेघ समय पर बरसकर अन्नादि की कमी नहीं होने देता। २. इस विराट्रूप कामधेनु के **बृहत् च रथन्तरं च**=बृहत् और रथन्तर **द्वौ स्तनौ आस्ताम्**=दो स्तन हैं। **यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ**-और यज्ञायज्ञिय तथा वामदेव दो स्तन हैं। '**द्यौर्वै बृहत्**'—शत० ९।१।३।३७ के अनुसार बृहत् का अर्थ द्युलोक

है। '**इयं पृथिवी वै रथन्तरम्**'—शत० ९।१।३।३६ के अनुसार पृथिवी 'रथन्तर' है। '**चन्द्रमा वै यज्ञायज्ञियम्**'—शत० ९।१।२।३९ के अनुसार यज्ञायज्ञिय का अर्थ चन्द्रमा है। '**प्राणो वै वामदेव्यम्**'—शत० ९।१।२।३८ में वामदेव्य का अर्थ प्राण किया गया है।

भावार्थ—विराट्‌रूप कामधेनु का वत्स 'इन्द्र' है, अभिधानी 'गायत्री' है तथा ऊधस् (अभ्र) है, अर्थात् दीप्त शासन व्यवस्थावाले राष्ट्र में पुरुष जितेन्द्रिय होते हैं, वेदविद्या का गान होता है, वहाँ समय पर बादल बरसता है। इस कामधेनु के द्युलोक व पृथिवीलोक, चन्द्र व प्राण—चार स्तन हैं।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—७ **साम्नीपङ्क्तिः**, ८ **आसुरीगायत्री**, ९ **साम्न्यनुष्टुप्**, १० **साम्नीबृहती** ॥

रथन्तर, बृहत्, वामदेव्य, यज्ञायज्ञिय

ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुहुन्व्यचो बृहता॥ ७॥
अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन॥ ८॥
ओषधीरेवास्मै रथन्तरं दुहे व्यचो बृहत्॥ ९॥
अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद॥ १०॥

१. **देवाः**-देववृत्ति के पुरुषों ने **रथन्तरेण**-पृथिवी से **ओषधीः एव अदुहन्**-ओषधियों का ही दोहन किया। ये ओषधियाँ ही उनका भोजन बनीं। **बृहता**-द्युलोक से **व्यचः**-विस्तार को (Expanse, Vastness) दोहा। द्युलोक की भाँति ही अपने हृदयाकाश को विशाल बनाया। विशालता ही तो धर्म है। **वामदेव्येन**-प्राण से—प्राणशक्ति से इन्होंने **अपः** कर्मों का दोहन किया—प्राणशक्ति-सम्पन्न बनकर ये क्रियाशील हुए। **यज्ञायज्ञियेन**-चन्द्रमा के हेतु से—आह्लाद प्राप्ति के हेतु से (चदि आह्लादे) **यज्ञम्**-इन्होंने यज्ञों को अपनाया। २. **एवम्** इसप्रकार यह जो विराट् को **वेद** ठीक से समझ लेता है, **असौ** इस पुरुष के लिए **रथन्तरम्** विराट् का पृथिवी-रूपी स्तन—**ओषधीः एव दुहे**-ओषधियों का दोहन करता है, **बृहत्** द्युलोकरूप स्तन **व्यचः** हृदय की विशालता को प्राप्त कराता है। **वामदेव्यम्**=प्राणशक्तिरूप स्तन **अपः**-कर्मों को प्राप्त कराता है और **यज्ञायज्ञियम्**-चन्द्ररूप स्तन यज्ञों को प्राप्त कराता है, अर्थात् यज्ञ करके यह वास्तविक आह्लाद को अनुभव करता है।

भावार्थ—विराट्‌रूप कामधेनु हमें 'ओषधियाँ, हृदय की विशालता, कर्म व यज्ञ' को प्राप्त कराती है।

१०. [दशमं सूक्तम्, तृतीयः पर्यायः]

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—१ **चतुष्पदाविराडनुष्टुप्**, २ **आर्चीत्रिष्टुप्** ॥

वनस्पतियों का विराट् को प्राप्त होना

सोदक्रामत्सा वनस्पतीनागच्छत्तां
वनस्पतयोऽघ्नत सा संवत्सरे समभवत्॥ १॥
तस्माद्वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति
वृश्चतेऽस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद॥ २॥

१. **सा**=वह विराट्‌रूप कामधेनु (विशिष्ट शासन व्यवस्था) **उदक्रामत्**-उत्क्रान्त हुई। **सा वनस्पतीन् आगच्छत्** वह वनस्पतियों को प्राप्त हुई, **वनस्पतयः तां अघ्नत**-वनस्पतियों ने उसे प्राप्त किया (हन् गतौ)। **सा**-वह **संवत्सरे** सम्पूर्ण वर्ष में **समभवत्**=उन वनस्पतियों के साथ

हुई—खूब अच्छी फसल हुई। **तस्मात्** इस कारण से **वनस्पतीनाम्**-वनस्पतियों का **वृक्णम्**-छिन्न भाग **अपि**-भी **संवत्सरे**-वर्षभर में **रोहति**-प्रादुर्भूत हो जाता है। **यः एवं वेद**-जो इस तत्त्व को समझ लेता है कि 'वनस्पतियों का छिन्नभाग भी फिर ठीक हो जाता है, तो हमारा छिन्नभाग भी क्यों न ठीक हो जाएगा' **अस्य**=इसका **अप्रियः भ्रातृव्यः वृश्चते** अप्रिय शत्रु भी कट जाता है।

भावार्थ—शासन-व्यवस्था के ठीक होने पर राष्ट्र में वृक्ण वृक्षों का रोहण होता है। जैसे वर्षभर में ये वृक्ष पुनः प्रादुर्भूत हो जाते हैं, इसी प्रकार इस राष्ट्र में लोग शत्रुओं से शत्रुता को भी समाप्त कर लेते हैं।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**३ चतुष्पदाप्राजापत्यापङ्क्तिः, ४ आर्चीबृहती** ॥

पितरों का विराट् को प्राप्त होना

सोद॑क्रामत्सा पि॒तॄनाग॑च्छ॒त्तां पि॒तरो॑ऽघ्नत॒ सा मा॒सि सम॑भवत्॥ ३॥

तस्मा॑त्पि॒तृभ्यो॑ मा॒स्युप॑मास्यं ददति॒ प्र पि॑तृया॒णं पन्था॑ जानाति॒ य ए॒वं वेद॑॥ ४॥

१. **सा उदक्रामत्**-वह विराट् उत्क्रान्त हुई। **सा पितॄन् आगच्छत्**=वह पितरों को प्राप्त हुई। **पितरः ताम् अघ्नत**-पितृजन उस विराट् को प्राप्त हुए। **सा**-वह विराट् **मासि**-सम्पूर्ण मास में **सम् अभवत्**-उन पितरों के साथ हुई। **तस्मात्**=विराट् के पितरों के साथ होने से **पितृभ्यः**-पितृजनों के लिए **मासि**-प्रत्येक मास पर **उपमास्यं ददति**-मासिक वृत्ति दे देते हैं। उत्तम सन्तान प्रतिमास पितरों के लिए आवश्यक धन देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। यही उनका पितृयज्ञ होता है। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार इस पितृयज्ञ के महत्त्व को समझ लेता है, वह **पितृयाणं पन्थां प्रजानाति**=पितृयाणमार्ग को सम्यक् जान लेता है। इस पितृयाण से चलता हुआ वह चन्द्रलोक (स्वर्ग) को प्राप्त करता है।

भावार्थ—विशिष्ट दीप्तिवाली शासन-व्यवस्थावाले राष्ट्र में युवक पितृयज्ञ को सम्यक् निभाते हैं। प्रतिमास पितरों के लिए आवश्यक धन प्राप्त करा देना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**५ चतुष्पदाप्राजापत्यापङ्क्तिः, ६ आर्चीबृहती** ॥

देवों का विराट् को प्राप्त होना

सोद॑क्रामत्सा दे॒वानाग॑च्छ॒त्तां दे॒वा अ॑घ्नत॒ सार्ध॑मा॒से सम॑भवत्॥ ५॥

तस्मा॑द्दे॒वेभ्यो॑ऽर्धमा॒से वष॑ट् कुर्व॑न्ति॒ प्र दे॑व॒यानं॒ पन्था॑ जानाति॒ य ए॒वं वेद॑॥ ६॥

१. **सा उदक्रामत्**-वह विराट् उत्क्रान्त हुई। **सा देवान् आगच्छत्**=वह देवों को प्राप्त हुई। **देवाः**=देव **ताम् अघ्नत**=उसे प्राप्त हुए। **सा**=वह **अर्धमासे सम् अभवत्**-प्रत्येक अर्धमास में उनके साथ रही। **तस्मात्**=इसी कारण से **देवेभ्यः** देवों के लिए **अर्धमासे**-प्रत्येक अर्धमास पर, अर्थात् प्रत्येक पक्ष पर पूर्णिमा और अमावास्या के दिन **वषट् कुर्वन्ति**-अग्निहोत्र करते हैं। **यः एवं वेद** जो इस तत्त्व को समझ लेता है कि प्रति पूर्णिमा और अमावास्या पर विशिष्ट यज्ञ करके वायु आदि देवों को शुद्ध करना आवश्यक है, वह **देवयानं पन्थां प्रजानाति**-देवयान मार्ग को भली प्रकार जान लेता है। इस देवयान मार्ग में चलता हुआ वह पुरुष 'सूर्यलोक' को प्राप्त करता है। सूर्य ही सर्वमुख्य देव है। देवयज्ञ करनेवाला सूर्यलोक को प्राप्त करता ही है।

भावार्थ—वायु आदि देवों की शुद्धि के लिए विराट्वाले देश में, पूर्णिमा व अमावास्या पर बड़े बड़े यज्ञ होते हैं। इन यज्ञों के करनेवाले देवलोक को प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**७ चतुष्पदाप्राजापत्यापङ्क्तिः, ८ आर्चीबृहती** ॥

मनुष्यों का विराट् को प्राप्त होना

सोदक्रामत्सा मनुष्याँ३नागच्छत्तां मनुष्या अघ्नत सा सद्यः समभवत्॥ ७॥

तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुप हरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद॥ ८॥

१. **सा**-वह विराट् **उदक्रामत्**=उत्क्रान्त हुई। **सा**-वह **मनुष्यान् आगच्छत्** मनुष्यों को प्राप्त हुई। **मनुष्याः तां अघ्नत**-मनुष्य उस विराट् को प्राप्त हुए। **सा** वह **सद्यः** शीघ्र ही **सम् अभवत्** उनके साथ हुई। **तस्मात्**=मनुष्यों के साथ उस विशिष्ट शासन व्यवस्था के सम्पर्क के कारण, अर्थात् जब राष्ट्र में शासन व्यवस्था अति उत्तम होती है तब शासक **मनुष्येभ्यः** मनुष्यों के लिए **उभयद्युः** दिन में दो बार—प्रातः वा सायं—**उपहरन्ति**-भोजन प्राप्त कराते हैं। **यः एवं वेद** जो इसप्रकार समझ लेता है कि दिन में दो बार ही भोजन करना ठीक है, **अस्य गृहे**-इसके घर में **उपहरन्ति**-सब प्राकृतिक शक्तियाँ आवश्यक पदार्थों को प्राप्त कराती हैं। यह दो बार भोजन करनेवाला स्वस्थ रहता है और सब आवश्यक पदार्थों को जुटाने में समर्थ होता है।

भावार्थ—विशिष्ट शासन व्यवस्था होने पर मनुष्य अग्निहोत्र की भाँति दिन में दो बार ही भोजन करते हुए स्वस्थ रहते हैं और सब आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

१०. [दशमं सूक्तम्, चतुर्थः पर्यायः]

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**१ चतुष्पदासाम्नीजगती, २ साम्नीबृहती, ३ साम्न्युष्णिक्, ४ आर्च्यनुष्टुप्** ॥

असुरों द्वारा माया-दोहन

सोदक्रामत्साऽसुरानागच्छत्तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति॥ १॥

तस्या विरोचनः प्राह्लादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम्॥ २॥

तां द्विमूर्धाऽऽर्त्व्योऽधोक्तां मायामेवाधोक्॥ ३॥

तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद॥ ४॥

१. **सा**-वह विराट् राष्ट्र-व्यवस्था **उदक्रामत्**-उत्क्रान्त हुई। **सा असुरान् आगच्छत्**=वह (असुषु रमन्ते) प्राणसाधना में रमण करनेवाले लोगों के समीप प्राप्त हुई। विशिष्ट शासन व्यवस्था के कारण एक शान्त राज्य में कुछ लोग प्राण साधना में प्रवृत्त हुए। **ताम्** उस विराट् को **असुराः** इन प्राणसाधकों ने **उपाह्वयन्त**-पुकारा कि **माय**-हे प्रज्ञे, **एहि इति**-आओ तो। प्राणसाधकों को इस विराट् ने प्राणसाधना के लिए अनुकूल वातावरण प्राप्त कराया और इसप्रकार यह प्रज्ञावृद्धि का कारण बनी। **तस्याः** उस प्राणसाधना के लिए अनुकूल वातावरण प्राप्त करानेवाली विराट् का **वत्सः** वत्स—प्रिय व्यक्ति **विरोचनः**-विशिष्ट दीप्तिवाला **प्राह्लादिः**-प्रकृष्ट आनन्द का पुत्र, अर्थात् प्रकृष्ट आनन्दवाला **आसीत्**-हुआ, तथा इसका **पात्रम्**-यह रक्षणीय शरीर **अयस्पात्रम्** लोहे का शरीर बना—बड़ा दृढ़ बना। २. **ताम्**-उस विराट्रूप कामधेनु का **द्विमूर्धा** 'शरीर व मस्तिष्क' दोनों के दृष्टिकोण से शिखर पर पहुँचनेवाले **आर्त्व्यः** ऋतु के अनुसार कर्त्तव्य-कर्मों को करने में कुशल पुरुष ने **अधोक्**-दोहन किया और **ताम्**-उस विराट् से **मायाम् एव** प्रज्ञा को ही **अधोक्**-दुहा। **असुराः**-ये प्राणसाधक **तां मायाम् उपजीवन्ति** इस बुद्धि के आश्रय से ही जीवन-यात्रा को पूर्ण करते हैं। **यः एवं वेद** जो इसप्रकार प्राणसाधना द्वारा प्रज्ञादोहन के महत्त्व को समझ लेता है वह **उपजीवनीयः भवति**-औरों को भी जीवन देनेवाला होता है।

भावार्थ—राष्ट्र में विशिष्ट शासन-व्यवस्था के कारण शान्त वातावरण में प्राणसाधक लोग प्राणसाधना द्वारा प्रज्ञा (माया) प्राप्त करते हैं। ये विशिष्ट दीप्तिवाले, प्रकृष्ट आनन्दवाले व दृढ़ शरीरवाले होते हैं। 'शरीर व मस्तिष्क' दोनों के दृष्टिकोण से शिखर पर पहुँचनेवाले ये व्यक्ति ऋतु के अनुसार कर्म करने में कुशल होकर प्रज्ञापूर्वक जीवन-यात्रा में आगे बढ़ते हैं, औरों को भी उत्कृष्ट जीवन प्राप्त कराने में साधन बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**५ चतुष्पदासाम्नीजगती, ६ साम्नीबृहती, ७ आसुरीगायत्री, ८ आर्च्यनुष्टुप्** ॥

पितरों द्वारा स्वधा-दोहन

सोदक्रामत्सा पितॄनागच्छत्तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ॥ ५ ॥
तस्या यमो राजा वत्स आसीद्रजतपात्रं पात्रम् ॥ ६ ॥
तामन्तको मार्त्यवोऽधोक्तां स्वधामेवाधोक् ॥ ७ ॥
तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥

१. **सा उदक्रामत्**=वह विराट् उत्क्रान्त हुई। **सा**=वह **पितॄन्**-रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोगों को प्राप्त हुई। **पितरः तां उपाह्वयन्त**=पितरों ने उसे पुकारा कि **स्वधे एहि इति**=हे आत्मधारणशक्ते! आओ तो। शासन-व्यवस्था के ठीक होने पर ही रक्षणात्मक कार्य ठीक से सम्पन्न हो सकते हैं। ये रक्षणात्मक कार्यों में संलग्न व्यक्ति आत्मधारणशक्तिवाले होते हैं। इन कार्यों को करते हुए वे यही समझते हैं कि इन कार्यों द्वारा वे औरों का नहीं अपितु अपना ही धारण कर रहे हैं। **तस्याः**=उस विराट् का **वत्सः**=प्रिय यह रक्षणात्मक कार्य में प्रवृत्त व्यक्ति **यमः**-अपनी इन्द्रियों का नियमन करनेवाला व **राजा**=दीप्त जीवनवाला **आसीत्**=होता है। ऐसा बनकर ही तो यह रक्षणात्मक कार्यों को कर पाता है। उसका **पात्रम्**=यह रक्षणीय शरीर **रजतपात्रम्** प्रजा का रञ्जन करनेवाला शरीर होता है। वह शरीर को स्वस्थ रखते हुआ प्रजा के रञ्जन में प्रवृत्त होता है। २. **ताम्**=उस विराट् को **मार्त्यवः**=(तदधीते तद् वेद) मृत्यु को समझनेवाले—मृत्यु को न भूलनेवाले और इसप्रकार **अन्तकः**=वासनाओं का अन्त करनेवाले इस पुरुष ने **अधोक्** दोहन किया। **ताम्**-उस विराट् से इसने **स्वधाम् एव अधोक्**=आत्मधारण शक्ति का ही दोहन किया। **पितरः**=ये रक्षण करनेवाले लोग **तां स्वधां उपजीवन्ति**=उस आत्मधारणशक्ति के द्वारा अपनी जीवन-यात्रा को सुन्दरता से पूर्ण करते हैं और **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार स्व-धा के महत्त्व को समझ लेता है वह **उपजीवनीयः भवति**=औरों की जीवन यात्रा की पूर्ति में सहायक होता है।

भावार्थ—रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोग, इस विशिष्ट दीप्तिवाली शासन-व्यवस्था से युक्त देश में, आत्मधारणशक्ति का उपार्जन करते हैं। ये संयमी व दीप्त होते हैं, अपने शरीर को प्रजा रञ्जन के कार्यों में आहुत करते हैं। ये मृत्यु को न भूलकर वासनाओं का अन्त करते हैं और आत्मधारण-शक्तिवाले होते हैं। स्वयं सुन्दर जीवन बिताते हुए औरों की सुन्दर जीवन-यात्रा में भी सहायक होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**९ चतुष्पदोष्णिक्, १० साम्नीबृहती, ११ प्राजापत्यानुष्टुप्, १२ आर्चीत्रिष्टुप्** ॥

मनुष्यों द्वारा कृषि व इरा (अन्न) का दोहन

सोदक्रामत्सा मनुष्याँ३ नागच्छत्तां मनुष्याँ३ उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ॥ ९ ॥
तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् ॥ १० ॥

तां पृथीं वैन्यो ऽधोक्तां कृषिं च सस्यं चाधोक्॥ ११॥
ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या३ उप जीवन्ति
कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद॥ १२॥

१. **सा उदक्रामत्**-वह विराट् उत्क्रान्त हुई। **सा मनुष्यान् आगच्छत्**=वह विचारपूर्वक कर्म करनेवालों को (मत्वा कर्माणि सीव्यति) प्राप्त हुई। **ताम्**-उसे **मनुष्याः उपाह्वयन्त**-मनुष्यों ने पुकारा कि **इरावति**=हे अन्नवाली! **एहि इति**-आओ तो। शासन व्यवस्था के ठीक होने पर मनुष्य सब अन्नों को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। **तस्याः**-उस विराट् का **वत्सः**-प्रिय—विचारपूर्वक कर्म करनेवाला मनुष्य **मनुः**-विचारशील व **वैवस्वतः**-ज्ञान की किरणोंवाला (सूर्यपुत्र) **आसीत्**-था। इस मनु वैवस्वत की **पृथिवी पात्रम्**-पृथिवी ही पात्र थी—रक्षण-साधन थी। २. **ताम्**-उस विराट् को **पृथी**-शक्तियों का विस्तार करनेवाले **वैन्यः**-मेधावी पुरुष ने **अधोक्**-दुहा। **ते मनुष्याः**-वे विचारपूर्वक कर्म करनेवाले लोग **कृषिं च सस्यं च उपजीवन्ति**=कृषि व कृषि द्वारा उत्पन्न अन्न से अपनी जीवनयात्रा पूर्ण करते हैं। **यः एवं वेद**-जो इसप्रकार कृषि व अन्न के महत्त्व को समझ लेता है, वह **कृष्टराधिः**-कृषि को सिद्ध करनेवाला होता हुआ **उपजीवनीयः भवति**-जीवन यात्रा निर्वहण में औरों का सहायक होता है।

भावार्थ—विचारपूर्वक कर्मों को करनेवाले लोग विशिष्ट शासन व्यवस्थावाले देश में कृषि द्वारा अन्न प्राप्त करते हुए जीवन-यात्रा को पूर्ण करते हैं शक्तियों का विस्तार करनेवाले ये मेधावी बनते हैं। ये जीवन यात्रा में औरों के लिए भी सहायक होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः**॥ देवता—**विराट्**॥ छन्दः—**१३ चतुष्पदोष्णिक्, १४ साम्न्युष्णिक्, १५ विराड्गायत्री, १६ आर्चीत्रिष्टुप्॥**

सप्तर्षियों द्वारा ब्रह्म व तप का दोहन

सोदक्रामत्सा सप्तऋषीनागच्छत्तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति॥ १३॥
तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम्॥ १४॥
तां बृहस्पतिराङ्गिरसो ऽधोक्तां ब्रह्म च तपश्चाधोक्॥ १५॥
तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति।
ब्रह्मवर्चस्यु पजीवनीयो भवति य एवं वेद॥ १६॥

१. **सा**-वह विराट् **उदक्रामत्**-उत्क्रान्त हुई। **सा**-वह **सप्त ऋषीन्**-सात ऋषियों को प्राप्त हुई। मनुष्य के जीवन में '**सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे**'—सप्त ऋषि 'दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व मुख' प्रभु द्वारा स्थापित किये गये हैं। इन **सप्तऋषयः**-सात ऋषियों ने **ताम्**-उस विराट् को **उपाह्वयन्त**-पुकारा कि हे **ब्रह्मण्वति एहि इति**-ज्ञानवाली वेदवाणि! तू आ तो। **तस्याः**-उस विराट् का **वत्सः**-प्रिय यह व्यक्ति **सोमः**-सौम्य स्वभाव का तथा **राजा**-व्यवस्थित जीवनवाला **आसीत्**-हुआ। **छन्दः**-वेदवाणी के छन्द ही उसके **पात्रम्**-रक्षासाधन बनें। २. **ताम्**-उस विराट् को **आङ्गिरसः**-अङ्ग प्रत्यङ्ग में रसवाले **बृहस्पतिः**=ज्ञानी पुरुष ने **अधोक्**-दुहा। **ताम्**-उससे **ब्रह्म च तपः च अधोक्**-ज्ञान और तप का ही दोहन किया। **सप्तऋषयः**-ये शरीरस्थ सप्तर्षि **तत्**-उस **ब्रह्म च तपः च**-ब्रह्म और तप को ही **उपजीवन्ति**-जीवन का आधार बनाते हैं। **यः एवं वेद**-जो इसप्रकार ब्रह्म और तप के महत्त्व को समझ लेता है, वह **ब्रह्मवर्चसी**-ब्रह्मवर्चसवाला व **उपजीवनीयः भवति**-जीवन-यात्रा में औरों को सहायता देनेवाला होता है।

भावार्थ—राष्ट्र में शासन व्यवस्था के ठीक होने पर शरीरस्थ सप्तर्षि वेदवाणी के द्वारा ज्ञान

व तप का जीवन बनानेवाले होते हैं। यह ज्ञानी व तपस्वी व्यक्ति ब्रह्मवर्चस् प्राप्त करके औरों की जीवनयात्रा में सहायक होते हैं।

१०. [दशमं सूक्तम् पञ्चमः पर्यायः]

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**१ चतुष्पदासाम्नीजगती, २, ३ साम्न्युष्णिक्, ४ आर्च्यनुष्टुप्** ॥

देवों द्वारा 'ऊर्जा' का दोहन

सोदक्रामत्सा देवानागच्छत्तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति॥ १॥
तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम्॥ २॥
तां देवः सविताऽधोक्तामूर्जामेवाधोक्॥ ३॥
तामूर्जां देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद॥ ४॥

१. **सा उदक्रामत्**=वह विराट् उत्क्रान्त हुई। **सा देवान् आगच्छत्**=वह देवों को—ज्ञानी पुरुषों को प्राप्त हुई। **तां देवाः उपाह्वयन्त**=उसे देवों ने पुकारा कि **उर्जे एहि इति**=हे बल व प्राणशक्ते! आओ तो। **तस्याः**=उस विराट् का **वत्सः**=प्रिय यह देव **इन्द्रः**=इन्द्रियों का अधिष्ठाता (जितेन्द्रिय पुरुष) था। **चमसः**=ये सिर ही **पात्रम्**=रक्षासाधन हैं। देवलोग इस चमस्—शिरोभाग को ठीक रखने से ही अपने पर शासन करते हुए इन्द्रियों के दास व विषयासक्त नहीं होते। २. **ताम्**=उस विराट् को **देवः**=उस प्रकाशमय जीवनवाले **सविता**=अपने अन्दर सोम का सवन करनेवाले पुरुष ने **अधोक्**=दुहा। उत्तम शासन-व्यवस्था होने पर शान्त वातावरण में देववृत्ति के पुरुष अपने जीवन को विषय-प्रवण न बनाकर जितेन्द्रिय बनें और सोम-सम्पादन में प्रवृत्त हुए। **तां ऊर्जाम्**=उस बल व प्राणशक्ति को **देवाः**=देव **उपजीवन्ति**=अपना जीवन आधार बनाते हैं। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार ऊर्जा के महत्त्व को समझ लेता है वह **उपजीवनीयः भवति**=औरों के जीवन का भी आधार बनता है औरों का उपजीव्य होता है।

भावार्थ—राष्ट्र-व्यवस्था के शान्त होने पर जितेन्द्रिय देववृत्ति के पुरुष सोम का शरीर में रक्षण करते हुए 'बल व प्राणशक्ति' का दोहन करते हैं और अपने जीवन को उत्तम बनाते हुए औरों के लिए भी सहायक एवं मार्गदर्शक होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**५ चतुष्पदाप्राजापत्याजगती , ६ साम्नीबृहतीत्रिष्टुप्, ७ विराड्गायत्री, ८ आर्चीत्रिष्टुप्** ॥

ब्राह्मण व क्षत्रिय द्वारा 'पुण्यगन्ध' का दोहन

सोदक्रामत्सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत्तां गन्धर्वाप्सरस
उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति॥ ५॥
तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत्पुष्करपर्णं पात्रम्॥ ६॥
तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसो ऽधोक्तां पुण्यमेव गन्धमधोक्॥ ७॥
तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति
पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद॥ ८॥

१. **सा उदक्रामत्**=वह विराट् उत्क्रान्त हुई। **सा**=वह **गन्धर्वाप्सरसः**=ज्ञान की वाणी को धारण करनेवाले ब्राह्मणों के पास तथा (आपः=नरसूनवः) प्रजाओं में विचरनेवाले (सृ गतौ) क्षत्रियों के पास **आगच्छत्**=आई। **ताम्**=उसे **गन्धर्वाप्सरसः**=ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों ने **उपाह्वयन्त**=पुकारा कि **पुण्यगन्धे एहि इति**=पवित्र ज्ञान (पुण्य) के साथ सम्बन्धवाली

(गन्ध=सम्बन्धे) आओ तो। **तस्याः**=उसका **वत्सः**=प्रिय **चित्ररथः**=अद्भुत शरीर-रथवाला अथवा (चित् ज्ञाने) ज्ञानयुक्त शरीर-रथवाला **सौर्यवर्चसः**=सूर्य के समान वर्चस्वाला **आसीत्**=था। **पात्रम्**=उसका यह रक्षणीय शरीर **पुष्करपर्णम्**=(पुष् कर, पृ पालनपूरणयोः) पोषण करनेवाला तथा पालन व पूरण में प्रवृत्त था। २. **ताम्**=उस विराट् को **वसुरुचिः**=शरीर में उत्तम निवास के द्वारा दीप्त होनेवाले **सौर्यवर्चसः**=सूर्यसम वर्चस्वाले ने **अधोक्**=दुहा। इस 'वसुरुचि सौर्यवर्चस्' ने **ताम्**=उस विराट् से **पुण्यं एव गन्धम्**=पवित्र ज्ञान के साथ सम्बन्ध को ही **अधोक्**=दुहा। ये **गन्धर्वाप्सरसः**=ज्ञान की वाणी को धारण करनेवाले और प्रजाओं में विचरनेवाले क्षत्रिय **तम्**=उस **पुण्यगन्धं उपजीवन्ती**=पवित्र ज्ञान के साथ सम्बन्ध को ही जीवनाधार बनाते हैं। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार 'पुण्यगन्ध' के महत्त्व को समझ लेते हैं, वे **पुण्यगन्धिः**=इस पवित्र ज्ञान के साथ सम्बन्धवाले **उपजीवनीयः**=औरों के लिए जीवन में सहायक **भवति**=होते हैं।

भावार्थ—उत्तम शासन-व्यवस्था होने पर ब्राह्मण व क्षत्रिय 'पवित्र ज्ञान के साथ सम्बन्ध' प्राप्त करने के लिए यत्नशील होते हैं। इससे वे शरीर में उत्तम ज्ञान व निवास से दीप्त व सूर्यसम वर्चस्वाले होकर उत्तम जीवन प्राप्त करते हैं और औरों के लिए भी सहायक होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**९ चतुष्पदोष्णिक्, १० साम्नीबृहती, ११ विराड्गायत्री, १२ त्रिपदाब्राह्मीभुरिग्गायत्री ॥**

इतरजनों द्वारा तिरोधा का दोहन

सोदक्रामत्सेतरजनानागच्छत्तामितरजना उपाह्वयन्त तिरोध एहीति॥ ९॥
तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम्॥ १०॥
तां रजतनाभिः काबेरकोऽधोक्तां तिरोधामेवाधोक्॥ ११॥
तां तिरोधामितरजना उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं
पाप्मानमुपजीवनीयो भवति य एवं वेद॥ १२॥

१. **सा उदक्रामत्**=वह विराट् उत्क्रान्त हुई। **सा इतरजनान् आगच्छत्**=(इ-तर) वह काम (वासना) को तैर जानेवाले लोगों को प्राप्त हुई। **ताम्**=उसे **इतरजनाः उपाह्वयन्त**=वासना को तैरनेवाले लोग पुकारते थे कि **तिरोधे एहि इति**=(तिरोधा=Over power, conquer, defeat) हे शत्रुपराजयशक्ते! आओ तो। **तस्याः**=उस विराट् का **वत्सः**=प्रिय—यह वासना को पराजित करनेवाला व्यक्ति **कुबेरः**=(कुबि आच्छादने) शरीर में शक्ति को आच्छादित करनेवाला **वैश्रवणः आसीत्**=विशिष्ट श्रवण-(ज्ञान)-वाला था। **पात्रम्**=उसका यह रक्षणीय शरीर **आमपात्रम्**=सब उत्तम गतियों (अम गतौ) का आधार था। २. **ताम्**=उस विराट् को, **रजतनाभिः**=रञ्जन की साधनभूत शक्ति को अपने अन्दर बाँधनेवाला **काबेरकः**=शक्ति को अपने अन्दर ही आच्छादित करनेवाला, यह **इतरजन**=कामजयी व्यक्ति **अधोक्**=दुहता था। **तां तिरोधाम् एव अधोक्**=उसने उस शक्ति के आच्छादन का—शत्रु पराजय का ही दोहन किया। **इतरजनाः**=ये वासना को तैर जानेवाले लोग **तां तिरोधाम् उपजीवन्ति**=उस शक्ति के आच्छादान की वृत्ति को—शत्रु-पराजय की वृत्ति को ही जीवनाधार बनाते हैं। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार शक्ति के अन्तरधान के महत्त्व को व कामरूप शत्रु को पराजित करने के महत्त्व को समझ लेता है, वह **सर्वं पाप्मानं तिरोधत्ते**=वह सारे पाप को पराजित कर डालता है तथा **उपजीवनीयः भवति**=औरों के जीवन में भी सहायक होता है।

भावार्थ—विशिष्ट शासन-व्यवस्था होने पर कामवासना को पराजित करनेवाला व्यक्ति अपने अन्दर शक्ति को आच्छादित करता है और विशिष्ट ज्ञानवाला बनता है। यह पाप को

पराजित करता हुआ अपने जीवन को सुन्दर बनाता है और औरों के लिए सहायक होता है।

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**१३ चतुष्पदासाम्नीजगती, १४ साम्नीबृहती, १५ साम्न्यनुष्टुप्, १६ आर्च्यनुष्टुप्॥**

सर्पों द्वारा विष-दोहन

सोद॑क्रामत्सा स॒र्पाना॑गच्छ॒त्तां स॒र्पा उपा॑ह्वयन्त॒ विष॑व॒त्येहीति॑॥ १३॥

तस्या॑स्तक्ष॒को वै॑शाले॒यो व॒त्स आसी॑दलाबुपा॒त्रं पात्र॑म्॥ १४॥

तां धृ॒तरा॑ष्ट्र ऐराव॒तो ऽधो॒क्तां वि॒षमे॒वाधो॑क्॥ १५॥

तद्वि॒षं स॒र्पा उप॑ जीवन्त्युपजीव॒नीयो॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑॥ १६॥

१. **सा उदक्रामत्**=वह विराट् उत्क्रान्त हुई। **सा सर्पान् आगच्छत्**=वह (सृप गतौ) गतिशील व्यक्तियों को प्राप्त हुई। **ताम्**=उस विराट् को **सर्पाः उपाह्वयन्त**=इन गतिशील पुरुषों ने पुकारा कि **विषवति एहि इति**=(विषम्=जलम्) हे प्रशस्त जलवाली! आओ तो। उत्तम राष्ट्र-व्यवस्था में पानी का समुचित प्रबन्ध होता है। **तस्याः**=उस विराट् का **वत्सः**=प्रिय वह क्रियाशील व्यक्ति **तक्षकः**=(तक्षक त्विषेर्वा) ज्ञान की दीप्तिवाला व **वैशालेयः**=उदार चित्तवृत्तिवाला (विशाला का पुत्र) **आसीत्**=था। इसका **पात्रम्**=यह रक्षणीय शरीर **अलाबुपात्रम्**=(लबि अवस्त्रंसने) न चूनेवाली शक्ति का पात्र होता है। इसके शरीर से शक्ति का अवस्त्रंसन नहीं होता। २. **ताम्**=उस विराट् को **धृतराष्ट्रः**=शरीररूप राष्ट्र का धारण करनेवाले **ऐरावतः**=(इरा-Water) प्रशस्त जलवाले—प्रशस्त जल से शरीर को नीरोग रखनेवाले ने **अधोक्**=दुहा। **तां विषम् एव अधोक्**=उसने प्रशस्त जल का ही दोहन किया। **सर्पाः**=वे क्रियाशील जीवनवाले व्यक्ति **तत् विषम् उपजीवन्ति**=उस जल के आधार से जीवन-यात्रा को सुन्दरता से निभाते हैं। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार जल के महत्त्व को समझता है, वह अपने तथा **उपजीवनीयः भवति**=औरों के लिए जीवन में सहायक होता है।

भावार्थ—उत्तम राष्ट्र-व्यवस्था होने पर क्रियाशील व्यक्ति प्रशस्त जल पाकर जीवन को स्वस्थ बना पाते हैं। ये शरीररूप राष्ट्र का उस प्रशस्त जल द्वारा धारण करते हुए औरों के लिए भी सहायक होते हैं।

१०. [दशमं सूक्तम्, षष्ठः पर्यायः]

ऋषिः—**अथर्वाचार्यः** ॥ देवता—**विराट्** ॥ छन्दः—**१ त्रिपदाविराड्गायत्री, २ द्विपदासाम्नीत्रिष्टुप्, ३ द्विपदाप्राजापत्यानुष्टुप्, ४ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्॥**

विषम्=जलम् (आपः रेतो भूत्वा०)

तद्यस्मा॑ ए॒वं वि॒दुषे॑ऽलाबु॑नाऽभषि॒ञ्चेत्प्र॒त्याह॑न्यात्॥ १॥

न च॑ प्रत्याह॒न्यान्मन॑सा त्वा प्र॒त्याह॒न्मीति॑ प्र॒त्याह॑न्यात्॥ २॥

यत्प्र॑त्या॒हन्ति॑ वि॒षमे॒व तत्प्र॒त्याह॑न्ति॥ ३॥

वि॒षमे॒वास्याप्रि॑यं भ्रातृ॑व्यमनु॒विषि॑च्यते॒ य ए॒वं वेद॑॥ ४॥

१. **यस्मै**=जिस **एवं विदुषे**=इसप्रकार जल के महत्त्व को समझनेवाले व्यक्ति के लिए **अलाबुना**=न चूने के द्वारा **तत्**=उस जल का—'**आपः रेतो भूत्वा०**' रेतःकणों का **अभिषिञ्चेत्**=सेचन करे, अर्थात् यदि प्रभुकृपा से रेतःकणरूप इन जलों का अवस्त्रंसन न होकर शरीर में अभिसेचन हो तो वह **प्रत्याहन्यात्**=प्रत्येक रोग का विनाश करता है **च**=और **न**

प्रत्याहन्यात्=प्रत्येक रोग का विनाश न भी कर पाये तो भी **मनसा**=मन से '**त्वा प्रत्याहन्मि इति**' **प्रत्याहन्यात्**=तुझे नष्ट करता हूँ, इसप्रकार नष्ट करनेवाला हो। रोग से अभिभूत न होकर वह रोग को अभिभूत करनेवाला बने। मन में 'स्वस्थ हो जाने' का पूर्ण निश्चय रक्खे। २. **यत् प्रत्याहन्ति**=जो तत्त्व रोगों का नाश करता है **तत्**=वह **विषम् एव**=जलरूप रेत:कण ही उन्हें **प्रत्याहन्ति**=नष्ट करता है। वस्तुत: रेत:कण ही रोगों का नाश करते हैं। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार **विषम्**=जल—रेत:कणों के महत्त्व को समझा लेता है, **अस्य**=इसके **अप्रियं भ्रातृव्यम्**=अप्रीतिकर शत्रु (रोगरूप शत्रु) को **अनु**=लक्ष्य करके **विषम् एव विषिच्यते**=यह जल शरीर में सिक्त किया जाता है। शरीर-सिक्त रेत:कण रोग-शत्रुओं के विनाश का कारण बनते हैं।

भावार्थ—जब मनुष्य रेत:कणों के महत्त्व को समझ लेता है तब इनका अवस्रंसन न होने देकर इन्हें शरीर में ही सिक्त करता है। शरीर-सिक्त रेत:कण रोगों का विनाश करते हैं। इनके रक्षण से रोगी का मन रोगाभिभूत नहीं होता।

अथैकोनविंशः प्रपाठकः॥

॥इत्यष्टमं काण्डम्॥